Brown Colour Book

Damage Book

आदर्श भारत की रूपरेखा

(Translation of INDIA OF MY DREAMS)

लेखक-

मोहनदास करमचन्द गांधी

संग्रहकर्त्ता-

आर० के० प्रभु

अनुवादक-

प्रो० देवराज उपाध्याय

प्राक्कथन

आज हम एक नये युग में प्रवेश कर रहे हैं। ऐसे समय में विश्व और देश के सामने महात्मा गान्धी के स्वप्नों के भारत का चित्र उपस्थित करने का विचार बड़ा ही शुभ है। स्वतंत्रता हमने प्राप्त कर ली है पर इसके कारण हम पर बड़े बड़े उत्तरदायित्व आ पड़े हैं, हम चाहें तो भारत के भविष्य को बनावें या बिगाड़ें। यह महात्मा गान्धी के नेतृत्व की कोई कम सफलता नहीं। उन्होंने सत्य और अहिंसा सभी अनुपम अस्त्रों से काम लिया है। आज के विविध-व्याधि-ग्रस्त जगत को उसकी आवश्यकता है। हमें मालूम है कि गान्धीजी को जिन साधनों से काम लेना पड़ा था वे कितने त्रुटि-पूर्ण थे पर तो भी इतिहास इस बात का साक्षी रहेगा कि इन परिस्थितियों में दूसरे देश को जो बलिदान करना पड़ता उससे कहीं कम बलिदानों के ही द्वारा हम अपने लक्ष्य की प्राप्ति में समर्थ हो सके हैं। जिस तरह हमारा अस्त्र असाधारण रहा है उसी तरह स्वातंत्र्य प्राप्ति के कारण हमें अवसर भी असाधारण प्राप्त हुए हैं। आज विजय और आनन्दोल्लास में हम न तो अपनी रहनुमाई करने वाले नेता को ही भूल सकते हैं और न उसको अनुप्राणित करने वाले अक्षय सिद्धान्तों को ही। स्वतंत्रता तो एक उच्चतर और वृहत्तर लक्ष्य प्राप्ति का साधन मात्र है। महात्माजी ने जो कुछ किया है और जिस उद्देश्य से किया है उसकी पूरी सिद्धि इसी में है कि हम उनके स्वप्नों के भारत का निर्माण करें। आज के संधिकाल में इस बात की आवश्यकता है कि हमें उनके मूल भूत सिद्धांतों की याद दिलाई जाय। ऐसी पुस्तक का सब स्वागत करेंगे जो पाठकों के सामने उन मूल भूत सिद्धान्तों को ही रखती ही नहीं पर यह भी बतलाती है कि हम स्वतंत्रता के बाद सामाजिक जीवन और शासन-पद्धति के निर्माण के द्वारा और बाह्य या आन्तरिक हस्तक्षेप से रहित जो वृहत माननीय उपकरण

प्राप्त होंगे उनके द्वारा उन्हें किस तरह जीवन में चरितार्थ कर सकते हैं। महात्मा गान्धी के लेखों में से महत्वपूर्ण और अभिव्यंजक लेखों के निर्वाचन में श्री र. क. प्रभुजी ने विवेक से काम लिया है। निस्सन्देह इसके द्वारा एतद्विषयर साहित्य-भंडार की स्मृद्धि होगी।

नई दिल्ली, राजेन्द्रप्रसाद
८, अगस्त १९४७.

अनुवादक की ओर से

विश्व में आज अराजकता फैली हुई है-इस तरह की अराजकता सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और शारीरिक। हालांकि आज मानव जाति के पास शान्ति पूर्ण सामंजस्यपूर्ण व्यवस्थित जीवन व्यतीत करने की जितनी सुविधायें और सामग्रियां प्राप्त हैं उतनी कभी भी नहीं थी पर यह भी कटु सत्य है कि आज की तरह हम कभी भी दुःखी नहीं थे, आज की तरह हमारा जीवन कभी नारकीय नहीं हुआ था। इस असंगति को देख कर कौन ऐसा विचारवान होगा जिसके दिल में दर्द नहीं होगा और वह दर्द की दवा नहीं खोजेगा। बापू के दिल में यही दर्द था जिसने उन्हें बेताब कर रखा था। इस दर्द की दवा उन्हें मिली थी सत्य और अहिंसा में। मानवता के दर्द की भी दवा यही है क्योंकि यह बापू के दिल के दर्द की दवा है और बापू का हृदय लोक-हृदय से मिल कर तदाकार हो गया था न।

'आदर्श भारत की रूपरेखा' का यही कण्ठ-स्वर है। अनुवादक का इसमें अटूट विश्वास है। उसकी हार्दिक अभिलाषा है कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति इन पंक्तियों का मनन करे विशेषतः नवयुवक,-देश के तरुण तपस्वी-गण तो देश, राष्ट्र और मानवता के नाम पर इन्हें हृदयङ्गम करें ही। बस इसी एक भावना से यह अकिंचन अनुवाद में हाथ लगाने का साहस कर सका है।

जोधपुर, ११-१२-४८ —देवराज उपाध्याय

भूमिका

इस पुस्तक में महात्मा गांधी के लेखों और व्याख्यानों से अवतरणों को एकत्र किया है और यह प्रयत्न किया गया है कि पाठकों को यह पता चल जाय कि अपने स्वतंत्र भारत से वे अपने घरेलू मामलों तथा विश्व के साथ भी किस तरह के आचरण की आशा करते हैं। विदेशी शासन ने गत १५० वर्षों से भारत की आत्मा को बन्धन में डाल रखा था और भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक रूप से तो करीब करीब उसे नष्ट ही कर दिया था। इस विदेशी शासन से १५ अगस्त १६४७ को उसे पूरी मुक्ति मिल जायेगी। स्वतंत्रता प्राप्त करने की राह में भारत कई जगह खण्डित होगया है और उसकी आत्मा परस्पर की घातक लड़ाइयों के कारण क्षत-विक्षत होगई है और स्वराज्य का जो रूप हमारे सामने आरहा है वह उससे कहीं विभिन्न है जिसे भारत की देश-भक्त संतान चाहती थी और जिसके लिये उन्होंने इतने वर्षों तक संघर्ष किया था। अतः यह स्वाभाविक ही है कि इस स्वतंत्रता के हृदय पर भारतीय स्वतंत्रता के जनक गांधीजी के हृदय में आनन्दोल्लास की प्रवृत्ति नहीं और वे वैदिक भूषियों की तरह पुकार उठते हैं "तमसो मा ज्योतिर्गमय" (अन्धकार से प्रकाश में ले चलो)

"भारत के मुसलमान एक अलग राष्ट्र है" इस असंगत धारणा को गांधीजी ने एक दम अस्वीकार कर दिया है। उन्होंने कहा है "इस विचार के विरुद्ध मेरी पूरी आत्म विद्रोह कर उठती है कि हिन्दू और इस्लाम दो परस्पर विरोधी संस्कृतियों और सिद्धान्तों के प्रतीक हैं। मेरे लिये ऐसे सिद्धान्त में विश्वास करना नास्तिकता है। मैं पूर्ण रूप से विश्वास करता हूँ कि कुरान का खुदा वही है जो गीता का

ईश्वर है और हम सब उसी ईश्वर के पुत्र हैं चाहे हम किसी नाम से पुकारे जांय। मैं इस धारणा के विरुद्ध अवश्य विद्रोह करूंगा कि लाखों भारतीय जो कल हिन्दू थे इस्लाम धर्म के अवलम्बन के कारण उनकी राष्ट्रीयता बदल गई।" गांधीजी इस बात में विश्वास नहीं करते थे कि भौगोलिक या आध्यात्मिक रूप में भारत सदा खण्डित रहेगा जैसा आज करने की कोशिश हो रही है। वे कहते हैं "चूंकि भारत में दो शासन स्थापित हो रहे हैं इसी से वह दो राष्ट्र नहीं हो जाता।" वह इसी आशा पर जीते हैं और इसी आशा से काम कर रहे हैं कि विदेशी शासकों के द्वारा भारत की एकता में जो कील ठोंक दी गई थी जो एकता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है, उसके हट जाने पर और आज के ताजे घावों के भर जाने पर उनके स्वप्नों के भारत का उदय होगा। वह दिन दूर नहीं।

इस पुस्तक के संग्रहकर्त्ता कार्य के गुरुत्व से खूब परिचित है और अपनी त्रुटियों को भी जानता है। 'यंग इंडिया' और 'हरिजन' के असर पत्रों में तथा भिन्न भिन्न व्याख्यानों और लेखों में गांधीजी जैसे महान कलाकार ने अपने स्वप्नों के भारत का जो चित्र खींचा है और उसे पूर्ण रूप में पाठकों के सामने लाने में खतरा है कि कहीं वह चित्र अधूरा न रह जाय या विकृत न हो जाय-इस बात को हम खूब महसूस करते हैं। पर चूंकि, छोटे पैमाने पर ही सही, गांधीजी के शब्दों में ही चित्र की पुनर्स्थापना करने की कोशिश की गई है अतः संग्रहकर्त्ता की आशा है कि वह चित्र की विशालता और यथार्थता से अधिक नहीं भटका होगा। फिर भी इस पुस्तक में जो कुछ भी त्रुटियां रह गई हो उसके लिये संग्रह-कर्त्ता गांधीजी और पाठकों दोनों से बहुत बहुत क्षमा-याचना करता है।

आर. के. प्रभु

उपक्रमणिका

मेरे स्वप्नों का भारत

भारतवर्ष की प्रत्येक वस्तु मुझे आकर्षित करती है। बड़ी से बड़ी महत्वाकांक्षा रखनेवाला मनुष्य जिस किसी चीज़ की इच्छा रख सकता है, वह यहां पर मौजूद है।

भारत भोग-भूमि नहीं बल्कि उसके विपरीत सच्चे अर्थ में कर्म-भूमि है। मुझे ऐसा लगता है कि भारत का उद्देश्य दूसरे देशों से भिन्न है। भारत में ऐसी क्षमता है कि वह विश्व का धार्मिक नेतृत्व कर सके। इस देश ने आत्म-शुद्धि के लिए जिस मार्ग को स्वेच्छा पूर्वक अपनाया है उस की मिशाल दुनिया में कहीं नहीं। भारत को लोहे के अस्त्रों की आवश्यकता नहीं, वह देवोपम अस्त्रों के सहारे लड़ा है, आज भी वह ऐसा कर सकता है। जहां अन्य देश पशुबल के पुजारी रहे हैं, भारत सबको आत्मबल से जीत सकता है। इतिहास में कई ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिससे यह साबित होता है कि आत्मबल के सामने पशुबल नगण्य है। कवियों ने इस सम्बन्ध में गीत गाये हैं और ऋषियों ने अपने अनुभवों का वर्णन किया है।

मैं एक ऐसे विधान के निमित्त चेष्टा करूंगा जो भारत को हर तरह की गुलामी व प्रभुता से मुक्त करेगा और जरूरत पड़ने पर उसे अपराध करने का अधिकार देगा। मैं एक ऐसे भारत के निर्माण के लिये प्रयत्नशील रहूँगा जिसे गरीब से गरीब व्यक्ति भी अपना देश समझेगा—ऐसा देश जिसके निर्माण में उसका हाथ रहा है और जहां उच्च और नीच वर्ग

के आदमियों का श्रेणी विभाजन नहीं होगा तथा जहां पर सब जातियों के लोग पूरे मेल जोल से रह सकेंगे। ऐसे भारत में अस्पृश्यता तथा मादक द्रव्यों जैसे अभिशापों के लिए कोई स्थान नहीं होगा। स्त्रियों के अधिकार पुरुषों के बराबर होंगे। चूंकि शेष विश्व के साथ हम मित्रभाव से रहेंगे, न तो किसी का शोषण करेंगे और न शोषित ही रहेंगे, अतः हमें कम से कम सेना की आवश्यकता पड़ेगी। उन सब स्वार्थों का आदर किया जायगा जो करोड़ों मूक जनता के विरोधी नहीं हैं, चाहे वे विदेशी हों या देशी। व्यक्तिगत रूप से मैं विदेशी और देशी में भिन्नता को घृणा की दृष्टि से देखता हूँ। यही मेरे स्वप्न का भारत है······मैं किसी दूसरी चीज़ से संतुष्ट नहीं हो सकता।

भारत विश्व के उन इने गिने देशों में से है जिन्होंने अपनी प्राचीन संस्थाओं को बनाए रखा है। यद्यपि उन पर अंध विश्वासों और भ्रांतियों का जंग भले ही लग गया हो। पर आज तक भारत ने यह स्पष्ट दिखला दिया है कि उसमें अंध विश्वासों और भ्रमों से अपने को पाक रखने की अपूर्व आन्तरिक शक्ति है। करोड़ों की जनता के सामने जो आर्थिक समस्याएं खड़ी हैं उन्हें हल कर लेने की भारतीय क्षमता के बारे में मेरा विश्वास जितना दृढ़ आज है, वैसा पहिले कभी नहीं था।

मैं भारत को स्वतंत्र और बलशाली देखना चाहता हूँ ताकि वह स्वेच्छा पूर्वक विश्व की उन्नति के लिये सात्विक बलिदान कर सके। शान्ति और युद्ध के प्रति जो विश्व का दृष्टिकोण है उसमें भारत की स्वतंत्रता से एक क्रान्तिकारी परिवर्तन अवश्य हो जायेगा। भारत की इस शक्ति-हीनता का सारी मानव-जाति पर बुरा असर पड़ रहा है।

यूरोप के पैरों तले पड़ा भारत मानव जाति के लिये आशा का कोई सन्देश नहीं दे सकता। जागृत और स्वतंत्र भारत के पास कराहते विश्व के लिये शान्ति और मैत्रीभाव का सन्देश है।

यदि भारत अहिंसात्मक उपायों द्वारा अपनी स्वतंत्रता फिर प्राप्त कर लेता है तो स्वतंत्रता हेतु संघर्ष करने वाले अन्य देशों के लिये सन्देश-वाहक तो होगा ही, पर इससे भी अधिक महत्व की बात यह है कि वह विश्व शान्ति के लिये एक नूतन और अभूतपूर्व मार्ग का उद्घाटन करने में सहायक होगा।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि भारत कष्ट और त्याग की अग्नि को पार कर सका और अपनी उस सभ्यता को जो सारी अपूर्णता के बावजूद भी काल के आघातों से आज तक अपनी रक्षा करती आई है-अवांछनीय प्रभावों से बचा सका तो वह विश्व की शान्ति और उन्नति में स्थायी रूप से सहायक होगा।

मैं अपने देश की स्वतंत्रता इस लिये चाहता हूँ ताकि मेरे स्वतंत्र देश से दूसरे देश कुछ सीख सकें और मेरे देश के सारे साधन मानव-जाति के लाभार्थ उपयोग में लाये जा सकें। जिस तरह आज की देशभक्ति यह शिक्षा देती है कि व्यक्ति को परिवार के लिये, परिवार को गांव के लिये, गांव को जिले के लिये, जिले को प्रान्त के लिये, प्रान्त को देश के लिये मर मिटना चाहिए, उसी तरह देश का भी स्वतंत्र होना जरूरी है ताकि वह जरूरत पड़ने पर विश्व के हित के लिये मिट सके। अतः राष्ट्रीयता से मेरा यह अर्थ है कि देश स्वतंत्र हो ताकि जरूरत पड़ने पर सारा का सारा देश मर मिटे-जिससे मानव-जाति जीवित रह सके। यहां पर जातिगत विद्वेष को स्थान नहीं है। यही हमारी राष्ट्रीयता हो।

मैं चाहता हूँ कि भारत यह जाने कि उसके पास एक ऐसी

आत्मा है जो अविनश्वर है, जो सारी शारीरिक कमजोरियों पर विजय प्राप्त कर ऊपर उठ सकती है और सारे संसार की भौतिक शक्तियों के गुट्ट का सामना कर सकती है।

यदि भारत तलवार के सिद्धांत को अपनाये तो सम्भव है कि वह क्षणिक विजय प्राप्त करले पर तब भारत वैसा नहीं रहेगा जिस पर मुझे नाज है। मैं भारत को प्यार करता हूँ क्योंकि जो कुछ आज मैं हूँ वह उसी की बदौलत है। मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि उसे विश्व को संदेश देना है, उसे यूरोप का अन्धानुकरण नहीं करना है। जब भारत तलवार ग्रहण करेगा वह मेरे लिए परीक्षा की घड़ी होगी। मैं आशा करता हूँ उस समय मैं अयोग्य साबित नहीं होऊंगा। मेरे धर्म की कोई भौगोलिक सीमा नहीं है। यदि इसमें मेरा जीवित विश्वास है तो वह धर्म देश-प्रेम से भी ऊँचा होगा। अहिंसा-धर्म के द्वारा भारत की सेवा ही के लिए मेरा जीवन अर्पित है।

मैं भारत का उत्थान इसलिए चाहता हूँ ताकि सारे विश्व को लाभ हो। दूसरे देशों को नष्ट कर भारत उन्नत हो, ऐसा मैं नहीं चाहता। अतः यदि भारत योग्य व सशक्त होगा तो अपनी कलाकृतियों व स्वास्थ्य-वर्द्धक मसालों को विश्व में भेजेगा परन्तु अफीम तथा नशीले द्रव्यों को बाहर भेजना अस्वीकार कर देगा, चाहे भारत को उनके व्यापार से काफी आर्थिक लाभ ही क्यों न होता हो।

भारत को अपना मकसद पश्चिम के देशों की तरह रक्त-रंजित मार्ग से नहीं प्राप्त करना है। उससे तो वे स्वयं आज नजर आ रहे हैं। भारत का मार्ग तो शांति का मार्ग है जो एक सीधे और धार्मिक जीवन से निष्पन्न होता है। भारत अपनी आत्मा को खोकर जीवित नहीं रह सकता। अतः आलस्यवश और

बेवशी से उसे यह नहीं कहना चाहिए कि 'मैं पश्चिम की बाढ़ से बच नहीं सकता'। उसमें इतनी शक्ति होनी चाहिये कि अपने तथा अपने विश्व के लिए इस आघात का सामना कर सकें।

जब भारत अपने पैरों पर खड़ा होगा, आत्म-निर्भर होगा और वैसी स्थिति में होगा जिसमें वह कोई प्रलोभन का या शोषण का शिकार न बन सके, तब आप ही आप किसी भी पश्चिमीय या पूर्वीय शक्ति के लिये लालच की गुंजाइश न रह जायेगी। तब उसमें कीमती अस्त्रों के भार से मुक्त होकर भी सुरक्षा की भावना जगेगी, उसका अन्तरिक आर्थिक संगठन किसी बाहरी आक्रमण के विरुद्ध सबसे बड़ा मोर्चा होगा।

मेरी कामना स्वतंत्रता से कहीं ऊंची है। भारत की मुक्ति के द्वारा मैं पश्चिमीय शोषण नीति के दारुण पंजो से संसार की तथाकथित दुर्बल जातियों के उद्धार की चेष्टा करूंगा।

मैं बड़ी नम्रता से निवेदन करूंगा कि यदि भारत सत्य और अहिंसा से अपना मकसद हासिल कर सका तो विश्व शान्ति को (जिसके लिये दुनिया के सब राष्ट्र तरस रहे हैं) स्थापित करने में उसका योगदान कुछ कम न होगा और तब वह दूसरे देशों से जो कुछ बिना मांगे उसे सहायता मिल रही है उसका कुछ मात्रा में प्रतिदान भी कर सकेगा।

भारत जब दूसरे राष्ट्रों के शोषण की ओर अग्रसर होगा—और औद्योगीकरण की हालत में उसे यह करना ही पड़ेगा-तब वह दूसरे राष्ट्रों के लिये अभिशाप और संसार के लिये खतरा हो जायगा।

यदि भारत हिंसा में विश्वास करने लगा और मैं जीता रहा तो मुझे भारत में रहने का उत्साह नहीं रह जायगा, उस पर मेरा जो हृदय का गर्व है, वह चकनाचूर हो जायगा।

मेरी देश-भक्ति मेरे धर्म की चेरी है। मैं भारत से उस तरह चिपटा रहता हूँ जिस तरह एक बालक मां की गोद से, क्योंकि मैं यह महसूस करता हूँ कि जिस आध्यात्मिक भोजन की मुझे आवश्यकता है उसे वह देता है। उसके वातावरण में हमारे हृदय की बड़ी से बड़ी महत्वाकांक्षा को झंकृत कर देने की शक्ति है। जब मेरा यह विश्वास चकनाचूर हो जायेगा तो मैं एक ऐसे अनाथ बालक की तरह हो जाऊंगा जिसे कोई संरक्षक प्राप्त होने की कभी आशा नहीं।

यह मैं खूब जानता हूँ कि जब भारत अहिंसात्मक उपायों द्वारा अपने मकसद को हासिल करेगा तो वह एक बड़ी सेना, वैसा ही नाविक बेड़ा और उससे भी मजबूत हवाई सेना रखना नहीं चाहेगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के युद्ध में भारत की आत्मचेतना यदि उस ऊंचाई को पहुँच सके जिसकी आवश्यकता अहिंसक जीत के लिये पड़ती है तो संसार के मूल्यांकन का रूप ही बदल जायेगा और युद्ध की सामग्री का अधिकांश व्यर्थ सा प्रतीत होने लगेगा। ऐसे भारत की कल्पना महज़ स्वप्न या लड़कपन की बेवकूफी सी भले ही जान पड़े पर मेरे मत में अहिंसा के द्वारा भारत की स्वतन्त्रता की प्राप्ति में ये बातें अन्तर्निहित हैं। ऐसी स्वतन्त्रता जब आयेगी तब वह ग्रेट-ब्रिटेन से एक आपसी समझौते के रूप में आयेगी। पर ऐसा समझौता करने वाला ब्रिटेन विश्व विजय के लिये दाव पेंच करने वाला गर्वोन्नत तथा साम्राज्यवादी ब्रिटेन न होगा पर वह सम्मिलित मानव-जाति के लक्ष्य में सहायता करने वाला एक विनम्र ब्रिटेन होगा।

ऐसी अवस्था में भारत वह बेवश भारत न रह जायेगा जिसे ब्रिटेन शोषण करने वाले युद्धों में अपनी इच्छा के विरुद्ध झोंक सके। उस समय विश्व की सारी हिंसक शक्तियों पर रोक-

थाम करने में उसकी बुलन्द आवाज सबसे अधिक समर्थ हो सकेगी।

भारत की राष्ट्रीय सरकार कौनसी नीति ग्रहण करेगी, मैं यह नहीं कह सकता। हो सकता है कि चाहते हुए भी मैं तब तक जिन्दा न रहूँ। यदि मैं जिन्दा रहा तो मैं उसे सलाह दूँगा कि वह अधिक से अधिक रूप में अहिंसात्मक नीति को ग्रहण करे। विश्व की शान्ति और व्यवस्था की स्थापना में भारतवर्ष की यह सबसे बड़ी देन होगी। मेरा ख्याल है कि भारत की राष्ट्रीय नीति एक तरह की सीमित सैनिकवाद की नीति होगी क्योंकि यहां पर बहुत सी सैनिक जातियां रहती हैं और शासन व्यवस्था में उनका हाथ तो रहेगा ही। परन्तु मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि राजनैतिक अस्त्र के रूप में अहिंसा की जो सफलता प्रदर्शित हो चुकी है, वह व्यर्थ नहीं जायेगी और भारत में अहिंसा का प्रतिनिधित्व करने वाला एक मजबूत दल अवश्य ही रहेगा।

पूर्ण स्वराज्य

स्वराज्य एक पवित्र, वैदिक शब्द है जिसका अर्थ आत्मा का राज्य एवं आत्म संयम है न कि सम्पूर्ण बन्धनों से मुक्ति जैसा Independence (स्वतंत्रता) से प्रायः समझा जाता है।

स्वराज्य से मेरा तात्पर्य राज्य की उस शासन प्रणाली से है जो वहां के जन्मजात व स्वीकृत बालिग स्त्री-पुरुषों की अधिकाधिक संख्या की अनुमति पर आश्रित हो, जिन्होंने शारीरिक परिश्रम के द्वारा राज्य की कुछ सेवा की हो तथा मतदाताओं की सूची में अपना नाम दर्ज कराने का कष्ट किया हो। चन्द आदमियों के शासन भार सम्भालने मात्र से ही सच्चे स्वराज्य का श्री गणेश नहीं होगा परन्तु स्वराज्य तो तभी आयेगा जब सर्वसाधारण में ऐसी क्षमता पैदा होगी कि वे राज्य-सत्ता के दुरुपयोग को रोक सकें। दूसरे शब्दों में सर्वसाधारण में, शिक्षा-प्रसार द्वारा, शासन को संचालित करने की क्षमता एवं उत्तरदायित्व के भावों को जगाकर ही स्वराज्य को प्राप्त करना है।

स्वराज्य का बना रहना तो हमारी आन्तरिक शक्ति और कठिन विघ्न-बाधाओं का सामना करने की योग्यता पर ही निर्भर है। सच बात तो यह है कि जिसकी प्राप्ति व रक्षा में सतत जागरूकता और प्रयत्न अपेक्षित नहीं वह स्वराज्य ही कैसा? अतः मैंने अपने वचनों और व्यवहार दोनों से यह दिखलाने की चेष्टा की है कि राजनैतिक स्वराज्य अर्थात् अधिकाधिक स्त्री-पुरुषों के लिए प्राप्त शासन व्यवस्था वैयक्तिक

स्वराज्य से श्रेयस्कर नहीं अतएव इस व्यापक स्वराज्य की प्राप्ति ठीक उन्हीं उपायों द्वारा हो सकती है जिन्हें वैयक्तिक स्वराज्य अथवा आत्मा के राज्य की प्राप्ति के लिए व्यवहृत किया जाता है।

मेरे लिए तो स्वतंत्रता का अर्थ हमारे देश के क्षुद्र से क्षुद्र अथवा दीन से दीन देशवासी के स्वतंत्र बनने में है। अंग्रेजों के चँगुल मात्र से भारत को मुक्त करा लेने भर में मेरी दिलचस्पी नहीं वरन् मैं तो चाहता हूँ कि भारत पर किसी प्रकार का दासत्वभार या बन्धन न रहें। बादशाह के तख्त-ताऊस के परिवर्तन मात्र में मेरी तनिक भी इच्छा नहीं।

अहिंसात्मक उपायों द्वारा स्वराज्य प्राप्त कर लेने पर संक्रांतिकाल में अव्यवस्था और अशान्ति के युग से होकर गुजरना पड़े यह फिर सम्भव नहीं। अहिंसा से स्वराज्य प्राप्ति का अर्थ तो एक विकासोन्मुख रक्तहीन क्रांति का होना है, जिसके फलस्वरूप पुराने शासकों से जनता के प्रतिनिधियों के हाथों में सत्ता का परिवर्तन होना वैसा ही स्वाभाविक होगा जैसे पूर्ण रूप से विकसित वृक्ष से पके हुए फल का टपक पड़ना। अहिंसा का इससे कम अर्थ नहीं।

हम लोगों की स्वराज्य की योग्यता इस बात पर निर्भर करती है कि हमारे जैसे विशाल और प्राचीन राष्ट्र के कार्य संचालन में जो विविध व पेचीदी समस्यायें आयें उन्हें सरकारी सहयोग की ओर बिना आंखें लगाये ही हम अपनी क्षमता से सुलझा सकें।

मेरा स्वराज्य हमारी सभ्यता की आत्मा या प्रतिभा को अक्षुण्ण रखेगा। मैं बहुत सी नई धाराओं व वस्तुओं को भी लाना या देखना चाहूँगा पर वे हर हालत में भारतीय सभ्यता

की पृष्ठ-भूमि पर ही खींची होंगी। मैं प्रसन्नतापूर्वक पश्चिम से ऋण लूँगा यदि मैं उसे उचित सूद साथ लौटा सकूँ।

अंग्रेजों को निकाल बाहर करने मात्र से स्वराज्य की स्थापना नहीं हो जायगी। हां, हमारी स्वतंत्रता के साथ हस्तक्षेप हो तो हमें युद्ध करना ही चाहिये। पर उसके बाद? क्या हम बर्बरता की दशा में रहने को स्वराज्य चाहते हैं जिसमें बिना किसी रोक टोक के बन्धनहीन सूअरों की तरह खोगारों में लूट पाट कर सकें? अथवा एक व्यवस्था, क्रम, संगठन या नियमबद्धता का स्वराज्य चाहते हैं जहां प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक वस्तु अपने उपयुक्त स्थान पर हो। हम स्वराज्य के लिए अयोग्य साबित होंगे यदि हम अपने पड़ोसी की सफाई से उदासीन या निश्चेष्ट रहें और अपने वासस्थान की सफाई मात्र से संतुष्ट हो रहें।

पार्लियामेंट के एक कानून से वैधानिक स्वराज्य भले ही मिल जाय पर वह एक कपोलकल्पित सी चीज़ होगी जिससे हमें कुछ भी लाभ होने को नहीं यदि हम लोग अपनी आंतरिक समस्याओं जैसे ग्राम निर्माण, मादक-द्रव्य निषेद, हिन्दू मुस्लिम एकता, अछूतोद्धार जैसी अहम उलझनों का हल नहीं निकाल सकें। वास्तव मे जनता का स्वराज्य जो हमारा ध्येय है, उसकी मंजिल तक पहुँचने के लिए उपर्युक्त समस्याओं को हल करने की क्षमता सच्चे स्वराज्य को प्राप्त करने की प्राथमिक शर्त है।

यहां तक कि पूर्ण स्वतंत्र विधान भी अपने में साध्य नहीं। स्वतंत्रता की आवश्यकता इसलिए है कि वर्तमान शासन की बुराइयों या कमजोरियों को दूर किया जा सके। अंग्रेजों का चला जाना मात्र ही स्वराज्य नहीं। इसका अर्थ तो यह है कि प्रत्येक ग्राम निवासी में यह भाव जगे कि वह अपने भाग्य का

स्वयं विधाता है तथा अपने ही नामजद प्रतिनिधियों द्वारा नियमों व विधानों का बनाने वाला खुद है।

सच्चे स्वराज्य का आशय यह है कि इस स्वतंत्र राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति सारे संसार के विरुद्ध होते हुए भी अपनी स्वतंत्रता को बनाये रखने की क्षमता रखे।

यदि स्वराज्य से हम सभ्य नहीं बनते और हमारी सभ्यता में इससे शुद्धता व दृढ़ता नहीं आती तो उस स्वराज्य का कुछ भी मूल्य नहीं। हमारी सभ्यता का तत्व यही है कि हम प्रत्येक कार्य में नैतिकता को सर्वोच्च महत्व प्रदान करते हैं— वह कार्य्य सार्वजनिक हो अथवा वैयक्तिक।

मै अथवा हम लोग जिस स्वराज्य का स्वप्न देख रहे हैं उसमें जाति और धर्म के आधार पर कोई भेद भाव नहीं बरता जायगा और न यह कुछ विशिष्ट पंडितों व धनीमानी लोगों के एकाधिपत्य की ही चीज़ होगी। स्वराज्य तो सबके लिए समान तौर पर होगा जिसमें उपर्युक्त विशिष्ट वर्ग भी सन्निहत है पर स्पष्ट तौर पर उसमें शक्तिहीन, असहाय, अन्धे और भूखे पेट पर परिश्रम करने वाले लाखों इन्सानों का अधिकार तो अवश्यमेव होगा। मैं अपनी सारी ताकत से इसके विरुद्ध लडूँगा क्योंकि मेरे लिये स्वराज्य का अर्थ है तो 'जन एवं न्याय का राज्य' ही है। मन्त्री चाहे हिन्दू हों, मुसलमान हों या सिख, धारा-सभाओं के सदस्य चाहे हिन्दू हों या, मुसलमान ही हों या किसी और जाति के ही क्यों न हों उन्हें समान न्याय के दोनों पलड़ों को तो बराबर रखना ही पड़ेगा।

पूर्ण स्वराज्य............पूर्ण इसलिये कि यह जैसा एक राजा के लिए है वैसा ही एक किसान के लिये, जैसा हिन्दुओं के लिये वैसा ही मुसलमानों के लिए, जैसा ही

पारसी, ईसाई के लिये वैसा ही जैन, यहूदी और सिक्खों के लिए अर्थात जाति, धर्म या सामाजिक स्थिति को त्याग कर सब के लिये।

हमने स्वराज्य प्राप्ति के लिए सत्य और अहिंसा का व्रत लिया है अतः इस कारण ऐसे स्वराज्य की सम्भावना ही दूर हो जाती है जो कुछ लोगों के लिए ज्यादा लाभदायक हो और कुछ के लिये कम, कुछ के लिये पक्षपात करे और दूसरों का अहित।

मेरे स्वप्नों का स्वराज्य गरीबों का स्वराज्य है। राजे महा-राजे तथा पूंजीपतिगण जो सुखोपभोग कर रहे हैं वे सब एक साथ मिल कर ही कर सकेंगे। पर इसका अर्थ यह नहीं कि उनके पास भी उनकी ही तरह बड़े बड़े महल होंगे। सुख प्राप्ति के लिये इनकी कोई जरूरत नहीं। हम या आप तो उस में खोजायेंगे। परन्तु जो धनिकों को जीवन की साधारण सुविधायें प्राप्त हैं उन्हें तो सबको मिलना ही चाहिए। इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि वह स्वराज्य पूर्ण स्वराज्य नहीं जिसमें आप को ये सुविधायें न मिल सकें।

मेरे स्वराज्य का मतलब दुनिया से अलग टूट कर रहने वाली स्वतंत्रता नहीं परन्तु स्वस्थ और गौरवपूर्ण स्वतंत्रता है। मेरी राष्ट्रीयता चाहे कितनी ही उग्र क्यों न हो अलगाव की नीति ग्रहण करने वाली नहीं तथा किसी राष्ट्र या व्यक्ति को हानि पहुँचाने वाली नहीं। मैं इस सिद्धान्त की शाश्वत् सत्यता में विश्वास करता हूँ कि अपनी सम्पति का प्रयोग इस तरह करना चाहिये जिसमें तुम्हारे पड़ोसी को हानि न हो।

सब कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि पूर्ण स्वराज्य से हमारा क्या अर्थ है और हम इसके द्वारा क्या प्राप्त करना

चाहते हैं। यदि हमचाहते हैं कि जनतामें अपने वास्तविक हित का ज्ञान हो तथा वह योग्यता उत्पन्न हो जिसके फलस्वरूप सारे संसार के विरुद्ध भी उस हित की रक्षा के भाव पैदा हों, यदि हम स्वराज्य के द्वारा सुख शान्ति, वाहरी या अन्दरूनी हमलों से रक्षा और जनता की आर्थिक दशा का उत्तरोत्तर सुधार चाहते हैं तो बिना राजनैतिक अधिकार के भी वर्तमान शासकों पर दबाव डाल कर उसे हासिल कर सकते हैं।

स्वराज्य से मेरा मतलब क्या है उसके बारे में किसी को गलतफहमी भी नहीं होनी चाहिए। इसका अर्थ है विदेशी शासन से पूर्ण मुक्ति और पूर्ण आर्थिक स्वतंत्रता। इसके एक छोर पर तो राजनैतिक स्वतंत्रता है और दूसरे छोर पर आर्थिक स्वतंत्रता। इसके दो और छोर हैं। उनमें से एक तो नैतिक और सामाजिक है और दूसरा छोर है धर्म-अपने उत्तम स्वरूप में, जिसमें हिन्दू, इस्लाम, ईसाई धर्म इत्यादि सब धर्म आ जाते हैं पर यह उन सब से भी ऊँचा है। यही हमारे स्वराज्य का चतुष्कोण है और यदि किसी भी कोण में कुछ भी कमी रही तो वह विकृत हो जायगा। कांग्रेस की भाषामें सत्य और अहिंसा के बिना हम इस राजनैतिक और आर्थिक स्वतंत्रता को नहीं प्राप्त कर सकते अर्थात साफ शब्दों में ईश्वर में सजीव विश्वास अतः नैतिक और सामाजिक उन्नति के बिना ।

मेरी धारणा का स्वराज्य तो तभी असली रूप में आयेगा जब हम सब को यह दृढ़ विश्वास हो जाय कि वह स्वराज्य सिर्फ सत्य एवं अहिंसा से प्रशस्त होगा, उसी मार्ग से उसको व्यवहारिक रूप मिल सकेगा तथा उसी राह के अनुसरण करने पर उसे अक्षुण्ण रखा जा सकेगा। अवांछनीय व हिंसक उपायों के द्वारा सच्चे लोकतंत्र या जनता के स्वराज्य की स्थापना नहीं

हो सकती। इसका प्रत्यक्ष कारण यह है कि इस मार्ग के अवलंबन का स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि विरोधियों को दबाकर या उनका गला घोंट कर सम्पूर्ण विरोधी शक्तियों का उन्मूलन किया जायगा। इससे तो वैयक्तिक स्वतन्त्रता ताक पर रख दी जावेगी। विशुद्ध अहिंसा द्वारा प्राप्त शासन प्रणाली में ही व्यक्ति की स्वतन्त्रता का पूर्ण विकास हो सकता है।

अहिंसा की नींव पर खड़े स्वराज्य में मनुष्यों को अपने अधिकारों का ज्ञात होना उतना अपेक्षित नहीं जितना अपने कर्त्तव्यों की चेतना से अवगत होना। कर्तव्य से अधिकार स्वयं ही आ जाते हैं और वे ही अधिकार सच्चे हैं जो कर्तव्य परायणता से प्रसूत हों। अतः नागरिकता के अधिकार उन्हीं को प्राप्त होते हैं जो अपने राज्य की सेवा करते हैं और ऐसे ही मनुष्य अपने प्राप्त अधिकारों के साथ न्याय कर सकते हैं। असत्य भाषण तथा गुंडेबाजी करने का सबको अधिकार प्राप्त है। पर इस अधिकार का प्रयोग करने वाले, व्यक्ति और समाज दोनों के लिये अहितकर हैं। पर जो सत्य और अहिंसा का पालन करते हैं उन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है और साथ ही अधिकार भी। जो मनुष्य कर्तव्यों के समुचित पालन द्वारा अधिकार प्राप्त करता है, वह अपने लिए नहीं वरन समाज की सेवा के लिये ही उसका प्रयोग करता है। जनता के स्वराज्य का अर्थ है व्यक्तियों के स्वराज्य का योगफल। नागरिक रूप में अपने कर्त्तव्यों के पालन से ही ऐसा स्वराज्य प्राप्त हो सकता है। इसमें कोई अधिकार की बात नहीं सोचता। वे समय पर आवश्यकतानुसार प्राप्त होते हैं ताकि हम कर्तव्यों का समुचित पालन कर सकें।

अहिंसा की नींव पर पनपे स्वराज्य में कोई किसी का शत्रु नहीं, प्रत्येक स्त्री व पुरुष सार्वजनिक हित के लिए सहयोग

देगा, सब पढ़ लिख सकेंगे और दिनोंदिन उनके ज्ञान में वृद्धि होगी। रोगों की मात्रा न्यूनातिन्यून होगी। कोई दीन हीन नहीं होगा और मेहनत करने वाले को सदैव काम मिल सकेगा। ऐसी राज्य व्यवस्था में जूएबाजी, मद्यपान और अनैतिकता व वर्ग विद्वेष को कत्तई स्थान नहीं। धनिक लोग अपनी सम्पति का उपयोग समझ बूझ कर उपयोगी कार्यों के लिए करेंगे न कि अपनी शान शौकत या सांसारिक सुख भोगों में। यह वांछनीय नहीं की एक मुट्ठी भर धनीमानी व्यक्ति तो रत्नमंडित प्रसादों में निवास करें और लाखों ऐसी गंदी कोठरियों में अपना जीवन यापन करें जहां सूरज की रोशनी और हवा का प्रवेश भी न हो। अहिंसात्मक स्वराज्य में किसी के न्यायोचित अधिकारों के साथ अनुचित हस्तक्षेप न होगा क्योंकि वस्तुतः ऐसे स्वराज्य में किसी के हाथों में अनुचित अधिकार रहेंगे ही नहीं। एक सुसंगठित राज्य में अधिकारों के साथ अनाधिकार चेष्टा की बात असम्भव होगी और बल प्रयोग द्वारा अधिकार हड़पने वाले से अधिकारों के पुनः छीनने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी।

दरिद्रनारायण

उस नाम रूप हीन और मानव बुद्धिके लिये अगम्य परमात्मा को लाखों नाम से मनुष्य पुकारते हैं। दरिद्रनारायण भी उन्हीं नामों में से एक है। इसका अर्थ है गरीबों का भगवान् अर्थात वह भगवान् जो गरीबों के हृदय में रहता है।

वह भगवान् जो लाखों भूखी जनता के हृदय में निवास करता है उसके सिवा मैं किसी और भगवान् को नहीं जानता। वे गरीब उसकी उपस्थिति को भले ही महसूस नहीं करें, मैं करता हूँ। मैं ईश्वर-रूपा सत्य अथवा सत्य-रूप ईश्वर की पजा इन लाखों मनुष्यों की सेवा द्वारा करता हूँ।

मैं उनके सामने ईश्वर के सन्देश पहुँचाने का साहस नहीं करता जिनकी आखों में तेज नहीं है, ऐसे भूखे आदमियों के सामने ईश्वर का सन्देश पहुँचाने की बात वैसी ही व्यर्थ होगी जैसे कुत्ते के पास। मैं पवित्र कार्यों के सन्देश के द्वारा ही उनके पास ईश्वर का सन्देश पहुँचा सकता हूँ। अच्छी तरह जलपान से तृप्त होकर और एक सुन्दरतर भोजन की ओर नजर गड़ाये यहां बैठ कर भगवान् की चर्चा करना सहज है पर जिन्हें दो जून भरपेट भोजन नहीं मिलता उनके सामने मैं भगवान की चर्चा कैसे कर सकता हूँ ? उन्हें तो भगवान भी रोटी और मक्खन के रूप में ही दीख सकता है। हां, भारत के किसान अपनी जमीन से रोटी पा रहे हैं। मैंने उन्हें चर्खा प्रदान किया ताकि वे मक्खन पा सकें और यदि आज मैं लंगोटी

धारण करता हूँ तो इसका एक मात्र अर्थ यही है कि मैं उन अध भूखे और नंगे-भूखे जन समूह का प्रतिनिधित्व करता हूँ।

भूखे रह कर आत्म हत्या कर लेने से कोई चीज मुझे रोकती है तो यह कि मेरा दृढ़ विश्वास है कि भारत जगेगा और इस नारकीय दरिद्रता से मुक्त होजाने की उसमें क्षमता है। इस विश्वास के बिना मुझे इस जीवन में कोई दिलचस्पी नहीं रह जायेगी।

गरीब के लिए तो अर्थ शास्त्र ही आध्यात्मवाद है। इन भूखे मरने वालों पर कोई दूसरी चीज़ असर नहीं कर सकती। पर उनको आप भोजन दो और वे आपही को भगवान समझेंगे। उनको कोई दूसरी बात नहीं सूझती।

इसी हाथ से मैंने उनके फटे चिथड़ों की खूंट में कसकर बांधे मटमैले पैसे एकत्र किये हैं। उनसे आधुनिक उन्नति की बात करना, भगवान की चर्चा करना उनका अपमान करना है। वे आपको और मुझे शैतान समझेंगे यदि हमने उनसे भगवान की चर्चा की। यदि वे भगवान को जानते हैं तो केवल एक भयकारक, हिंसक और निर्दय अत्याचारी के रूप में।

मेरा तो ख्याल है कि हम सब तरह से चोर हैं। जिस चीज़ की हमें तत्कालीन आवश्यकता नहीं यदि उसे हम लेते हैं और अपने पास रखते हैं तो अवश्य ही हम उसे किसी दूसरे से चुराते हैं। यह प्रकृति का मूल सिद्धान्त है कि वह हमारी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त वस्तुओं का उत्पादन करती है; यदि प्रत्येक व्यक्ति उतनी ही चीज़ से सन्तुष्ट रहे जितनी की उसे जरूरत है तो संसार में गरीबी हो ही नहीं, और न कोई भूखों मरे।

भारत में ऐसे लाखों आदमी हैं जिन्हें दिन भर में एक

बार ही भोजन मिलता है तिस पर भी जो रोटी मिलती है उसमें घी नहीं, एक चुटकी नमक भी नहीं। आपके और मेरे पास जो चीजें हैं उन पर हम लोगों का कोई अधिकार नहीं जब तक इन लाखों मनुष्यों को पहनने के लिए कपड़े और भोजन के लिए अन्न नहीं मिलता। हमें उचित है कि हम अधिक समझदारी से काम लें, अपनी जरूरतों में कांट छांट करें और स्वेच्छा से कुछ चीजों को छोड़ दें ताकि उन्हें उचित रूप से भोजन और वस्त्र मिल सकें।

हमें दैनिक जीवन-निर्वाह के लिए पेट भरने भर ही अन्न मिला है, ज्यादा नहीं। इस दैवी नियम का हमें ज्ञान नहीं अथवा जान बूझकर हम उसकी उपेक्षा करते हैं। इसका परिणाम होता है कि विषमता उत्पन्न होती है और इसके साथ अन्य बुराइयां भी। धनिकों के पास अत्यधिक मात्रा में चीजें हैं जिनकी उन्हें जरूरत नहीं जो योंही बर्बाद होती हैं और दूसरी ओर लाखों भूखे आदमी उनके अभाव में भूखों मर जाते हैं। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी जरूरत भर ही अपने पास रखे तो किसी चीज का अभाव न हो और सब सुख-संतोष का जीवन व्यतीत करें।

हम लोगों को तब तक आराम करने से अथवा भर पेट भोजन करने में शर्म आनी चाहिए जब तक हाथ पैर रखने वाले, एक भी स्त्री या पुरुष को काम या भोजन नहीं मिलता।

सब से सुन्दर नियम क्या है? वह यही है कि जो लाखों मनुष्यों के पास नहीं है उसे हम नहीं लें। इस तरह के त्याग की योग्यता हमारे पास यकायक न आ जावेगी। इसके लिए पहली शर्त यह है कि हम एक ऐसी मनोवृत्ति पैदा करें जो उन सुविधाओं को ग्रहण करने से अस्वीकार करे जिनसे लाखों

नर नारी वंचित हैं। दूसरी शर्त यह है कि हम ऐसी मनोवृति के अनुसार अपने जीवन के ढांचे को शीघ्रातिशीघ्र ढालें।

ईसा, मुहम्मद, बुद्ध, कबीर, चैतन्य, शंकर दयानन्द, राम कृष्ण वगैरह ऐसे व्यक्ति थे जिनका लोगों पर विराट प्रभाव था और जिन्होंने हजारों मनुष्यों के चरित्रों का पुनः निर्माण किया। उनके इस पृथ्वी पर रहने से ही संसार समृद्ध हुआ है। वे ऐसे ही व्यक्ति थे जिन्होंने जान बूझ कर गरीबी का वरण किया था।

जो जनता के सेवक हैं उनके ही हृदय को भगवान अपने सिंहासन के लिये चुनता है। आबू बेन आधम एक ऐसे ही व्यक्ति थे। अतः ईश्वर की सेवा करने वाले की नामावली में उनका नाम सब से आगे था।

पर कौन दुख उठा रहा है और विपत्ति ग्रस्त है? पद दलित और गरीब जो सच्चा भक्त है उसे चाहिए कि वह इनकी सेवा अपने शरीर, आत्मा और मन से करे। परन्तु जो गरीबों के लिए चर्खा कातने भर भी कष्ट नहीं उठाता और तरह तरह की बहानेबाजी करता है वह सेवा का अर्थ नहीं जानता। जो खुद चर्खा कातता है और गरीबों को भी वैसा ही करने को आमन्त्रित करता है वही ईश्वर की सेवा करता है। भगवद्गीता में भगवान ने कहा है कि भक्ति पूर्वक जो मुझे पंच, पुष्प, फल तोय अर्पित करता है वही मेरा सेवक है। और जहाँ नम्र, पतित और सर्वस्वापतृत व्यक्ति रहते हैं वहीं मैं खड़ा होता हूँ। ऐसों के लिए चर्खा कातना सबसे बड़ी पूजा है, सब से बड़ी प्रार्थना है और सबसे बड़ा त्याग है।

इस भूख से मरने वालों के साथ घुल मिल जाने का सबसे सहज और सुन्दर उपाय यह है कि आप मेरे बताये हुए तीन

तरीकों पर इनमें चर्खे कातने का संदेश प्रचार करें। आप दूसरा प्रचार यों कर सकते है; खुद चर्खा-कताई का विशेषज्ञ बनें, खादी पहनें तथा आर्थिक सहायता प्रदान करें।

इसके लिए इतना ही काफी नहीं कि इक्के दुक्के वकील या डाक्टर चर्खा कातें या कुछ बाल काटने वाले या दर्जी राष्ट्रीय सेवा करें। नहीं, अपने व्यवसाय का पालन करते हुए हजारों हजार कारीगरों और किसानों को इस गुण को सीखकर राष्ट्र की सेवा करनी चाहिए। पढ़ने लिखने वालों को शारीरिक परिश्रम करने के महत्व को समझना चाहिये। शरीर से परिश्रम करने वालों को साहित्य के महत्व को समझना चाहिए। इस तरह प्रत्येक को हर राष्ट्र की उन्नति के लिए सब कुछ करना चाहिये और उन कुकार्यों के करने से बचना चाहिये जो राष्ट्र की महत्ता घटाते हैं।

रचनात्मक कार्यक्रम

रचनात्मक कार्य-क्रम एक बहुत बड़ी योजना है। इसके अन्दर बहुतसी बातें आजाती हैं (१) हिंदू मुसलिम या साम्प्रदायिक एकता (२) अस्पृश्यता निवारण (३) मादक द्रव्य निषेध (४) खादी (५) दूसरे दूसरे ग्राम उद्योग (६) गांवों की सफाई (७) नई अथवा बुनियादी शिक्षा (८) प्रौढ शिक्षा (९) नारियों की उन्नति (१०) स्वास्थ्य और सफाई सम्बन्धी शिक्षा (११) राष्ट्र भाषा का प्रचार (१२) स्वभाषा प्रेम की शिक्षा (१३) आर्थिक समानता की चेष्टा। इस सूची में आवश्यकतानुसार वृद्धि की जा सकती है परन्तु, मेरे जानते यह सूची इतनी व्यापक है कि जो बातें छूटी सी जान पड़ती हैं वे भी इसके अन्दर आजाती हैं। पाठकों को यह स्पष्ट होगा कि इन चीजों की कमी के कारण ही हम दासत्व के बन्धन में पड़े हैं।

अब ऊपर लिखी बातों पर सरसरी तौर पर विचार करें। हिन्दू मुसलिम अर्थात् साम्प्रदायिक एकता के बिना हम सदा ही पंगु बने रहेंगे। एक पंगु भारत स्वराज्य की लड़ाई जीत ही कैसे सकता है ? साम्प्रदायिक एकता का अर्थ है हिन्दू, सिख, मुसलमान, इसाई, पारसी और यहूदी सबमें एकता। इस सबों को लेकर ही भारतवर्ष बना है। जो मनुष्य इनमें से एक सम्प्रदाय की भी उपेक्षा करता है वह रचनात्मक कार्य का मर्म नहीं समझता। जब तक अस्पृश्यता के अभिशाप से हिन्दू का

मस्तिष्क कलुषित है तबतक वह संसार की आंखों में अस्पृश्य है और एक अस्पृश्य अहिंसात्मक स्वराज्य की लड़ाई नहीं जीत सकता। अस्पृश्यता-निवारण का अर्थ है तथाकथित अस्पृश्यों के साथ भाई चारे का सम्बन्ध-भाव रखना। जो मनुष्य उनके साथ ऐसा सद्व्यवहार करेगा उसे उच्च नीच की भावना-वास्तव में सब गलत वर्ग भावना से दूर रहना पड़ेगा। उसके लिये सारा संसार ही एक परिवार की तरह होगा। अहिंसात्मक स्वराज्य के अन्दर किसी देश को शत्रु देश के रूप में देखने की भावना असंभव होगी।

जो लोग मादक द्रव्यों के गुलाम रहे हैं या हैं उनके लिये पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति असम्भव है। हमें इसे कभी भूलना नहीं चाहिए कि मादक द्रव्यों के पंजों में पड़े व्यक्ति में साधारण नैतिकभावना रहती ही नहीं।

यह कहा जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति अब विश्वास करने लगा है कि करोड़ों मनुष्यों की भूख की तात्कालिक और उचित दवा खादी को छोड़कर दूसरी है ही नहीं। अतः इस विषय पर विस्तार से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। मैं इतना ही कहूँगा कि खादी की जागृति में ही ग्रामों के नष्ट-प्रायः गरीब कारीगरों की जागृति का रहस्य छिपा है। खादी के जरूरी सामान, मसलन चर्खे-कर्घे वगैरह ग्रामों के बढई और लुहारों के द्वारा ही तैयार होंगे। क्योंकि ये जब तक गांवों में ही नहीं बनाये जायेंगे तब तक ये आत्मनिर्भर और उन्नति शील नहीं हो सकते। खादी की पुनर्जागृति में और दूसरे ग्राम उद्योगों की बात छिपी है। जैसे सूर्य मण्डल, सूर्य के बिना अन्धकार मय है वैसे ही सूर्य भी दूसरे ग्रहों के बिना प्रभा हीन है। संसार की प्रत्येक वस्तु में अन्योन्याश्रम संबन्ध है। भारत का उद्धार ग्रामों के उद्धार बिना असम्भव है।

यदि ग्रामों के पुननिर्माण के अन्दर गांवों की सफाई की बात नहीं ली जाती तो हमारे ग्राम आज की तरह ही सदा कूड़ा करकटों के ढेर ही बने रहेंगे। गांवों की सफाई ग्रामीण जीवन का बड़ा ही आवश्यक अँश है और यह जितना आवश्यक है उतना कठिन भी है। युगों से चली आती गन्दगी को दूर करने के लिए बहुत ही साहस और कठिन उद्योग की आवश्यकता है। ग्राम का कार्यकर्त्ता जिसे ग्राम सफाई के विज्ञान का ज्ञान नहीं, जो एक सफल मेहतर नहीं, वह ग्राम की सेवा के योग्य कदापि नहीं।

यह तो साधारणतः स्वीकृत करली गई बात मालूम पड़ती है कि बुनियादी शिक्षा के बिना भारत के करोड़ों बालक-बालिकाओं की शिक्षा एक तरह से असंभव है। अतः ग्राम के कार्यकर्त्ता को इसका पूरा २ ज्ञान प्राप्त करना चाहिये और स्वयं बुनियादी शिक्षा का शिक्षक बनना चाहिए।

बुनियादी शिक्षा के साथ प्रौढ शिक्षा आप ही आप पीछे २ लगी आयेगी। जहां इस नई शिक्षा ने जड़ें नहीं पकड़ी हैं वहां स्वयं छोटे २ बच्चे ही अपने पिता और माताओं के शिक्षक हैं। जो हो ग्राम कार्यकर्ता को प्रौढ शिक्षा को हाथ में लेना ही पड़ेगा।।

कहा जाता है नारी पुरुष का उत्तम अर्द्धांश है। जब तक कानूनन उसको वे ही अधिकार नहीं प्राप्त हो जाते जो पुरुष को हैं, जब तक पुत्री के जन्म का स्वागत उसी प्रकार से नहीं किया जाता जिस प्रकार पुत्र का किया जाता है, तब तक हमें याद रखना चाहिए, भारत एक आंशिक पक्षाघात से पीड़ित है। नारियों को दबाये रखना अहिंसा को दूर ही रखना है। अतः प्रत्येक ग्राम कायकर्त्ता को नारियों को मां, बहन और पुत्री की

तरह समझना चाहिये और उसे आदर की दृष्टि के देखना चाहिए। ऐसे ही कार्यकर्ता पर ग्रामवासियों का विश्वास होगा।

स्वास्थ्य हीन लोगों के लिये स्वराज्य प्राप्त करना असम्भव है। अतः हमें लोगों के स्वास्थ्य की उपेक्षा के दोष का भागी नहीं बनना चाहिये। प्रत्येक ग्राम-कार्यकर्त्ता को स्वास्थ्य के साधारण नियमों का ज्ञान होना चाहिये।

एक सार्वजनिक भाषा के बिना कोई राष्ट्र टिक नहीं सकता हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू के विवाद में न पड़कर प्रत्येक कार्यकर्त्ता को राष्ट्र भाषा का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। वह राष्ट्र भाषा वैसी होगी जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनों समझ सकें।

अंग्रेजी भाषा के मोह ने हमें प्रान्तीय भाषा के प्रति वफादारी के भाव को कम कर दिया है। और कुछ नहीं तो इसने प्रायश्चित स्वरूप ही सही। प्रत्येक कार्यकर्त्ता का कर्तव्य है कि वह ग्राम निवासियों में अपनी बोलियों के प्रेम जागृत करें। उसे भारत की दूसरी भाषाओं के प्रति आदर भावना रखनी होगी, और अपने कार्य क्षेत्र की भाषा का ज्ञान प्राप्त करना होगा। तब वह ग्राम निवासियों में अपनी बोलियों के लिये प्रेम का भाव जागृत कर सकेगा।

यदि यह सारा कार्यक्रम आर्थिक समानता के आधार पर नहीं है तो वह बालू पर की भीत के समान है। आर्थिक समानता का मतलब यह कभी नहीं कि प्रत्येक के पास सांसारिक सुविधाओं का सामान बराबर मात्रा में रहें। परन्तु इसका

मतलब अवश्य है कि उसके पास रहने योग्य मकान पूरे और उचित भोजन की सामग्री और तन ढकने के लिये काफी खादी। इसका यह भी अर्थ है कि आज की क्रूर असमानता भी अहिंसात्मक उपायों से दूर की जायगी।

गांवों की ओर चलें

मेरा सदा से यह विश्वास रहा है और मैंने असंख्यबार यह दुहराया है कि भारत कुछ नगरों में नहीं परन्तु ७,००,००० ग्रामों में रहता है। पर हम नगर निवासी यह विश्वास करते रहे हैं कि भारत शहरों में निवास करता है और ग्राम केवल उसकी जरूरतों को पूरी करने के लिये बनाये गये हैं। परन्तु हमने कभी भी ठहर कर सोचने का कष्ट नहीं किया है कि इन गरीबों को भरपेट खाने और तन ढकने को कपड़े एवं धूप और वर्षा से बचने के लिये कहीं आश्रयस्थल भी है।

मैंने देखा है कि नगर निवासी ने प्रायः ग्रामवासियों का शोषण ही किया है। वास्तव में वह गरीब ग्रामीणों की रोटी पर ही पलता आया है। बहुत से अंग्रेज अफसरों ने भारत के लोगों की दशा का वर्णन किया है। जहां तक मुझे मालूम है किसी ने यह नहीं लिखा है कि भारत के ग्रामनिवासियों को जीवन निर्वाह के काफी सामान प्राप्त हैं। उन्होंने लिखा है आबादी के अधिक लोग अनाहार का जीवन व्यतीत करते हैं, १०% तो अधभूखे रहते हैं, और करोड़ों को एक चुटकी नमक, मिर्च और थोड़े से चावल और कुछ सूखे अन्न के दानों पर सन्तोष करना पड़ता है।

यदि हमसे किसी को उस भोजन पर रहने के लिये कहा जाय तो विश्वास मानें हम एक महीने से अधिक जीने की आशा नहीं कर सकते अथवा हमारी मानसिक शक्ति का ह्रास

हो जाने का डर है। तो भी हमारे ग्राम उसी बिगड़ी हालत में जिन्दगी बसर कर रहे हैं।

७५ प्रतिशत लोग खेतीहर हैं। परन्तु यदि उनकी गाढ़ी कमाई के फल को सारा का सारा हम हड़प जायँ अथवा दूसरों को हड़प जाने की इजाजत दें फिर तो स्वराज्य की सच्ची भावना कहां देखने को है ?

हमने ग्राम निवासियों के प्रति बड़ा ही गुरुतर अपराध किया है। इसका प्रायश्चित तो यह है कि हम उनकी नष्ट प्रायः कारीगरी को जागृत करने से लिये प्रोत्साहन दें और उसके लिये बाजार कायम करें।

हमें उन्हें बताना है कि वे साग-सब्जी और अन्न बिना अधिक खर्चे के पैदा कर सकते हैं और इनसे सुन्दर स्वास्थ्य भी रख सकते हैं। हमें उन्हें बताना है कि उबालने से साग के बहुत से पोषक-तत्व नष्ट हो जाते हैं।

कुछ लिख पढ भर लेने के ज्ञान से अधिक आवश्यक हैं कि वे अपने आर्थिक जीवन का ज्ञान प्राप्त करें और जानें कि उसे कैसे सुधारा जा सकता है? वे आज केवल निर्जीव यंत्र की भांति काम करते जाते हैं। उनमें अपने वातावरण के प्रति उत्तरदायित्व का ज्ञान नहीं होता। वे नहीं जानते कि काम करने का आनन्द क्या होता है ?

हमें उन्हें सिखाना है कि समय, स्वास्थ्य और धन का सदुपयोग कैसे हो सकता है ? कर्नल कर्टिस ने कहा है कि हमारे गाँव कूड़ा करकट के ढेर हैं। उन्हें एक आदर्श गाँव के रूप में हमें परिणत करना है। ताजी हवा के बीच रह कर भी ग्रामीणों को ताजी हवा नहीं मिलती। उन्हें ताजे अन्न से भेंट नहीं होती है हालाँ कि ताजे ताजे अन्न समूह से वे घिरे रहते हैं।

इन अन्न के मामले में मैं धर्म प्रचारक की भाषा में बोल रहा हूँ क्योंकि मैं गाँवों को सुन्दरता का आदर्श बनाना चाहता हूँ।

घरेलू उद्योग धन्धों की उन्नति का श्री गणेश खादी प्रचार की चेष्टा से ही हो सकता है। हाथ के बुने कपड़े, हाथ के बने कागज, हाथ के छँटे चावल, घर की बनी रोटी और मुरब्बों का पश्चिम में भी साधारण प्रचार है। सिर्फ बात यही है कि भारत में जो उनका महत्व है उनका शतांश भी वहां नहीं है। हमारे लिये उनकी पुनर्जागृति जीवन संचार है, उनका नाश ग्रामनिवासियों की मृत्यु है।

गाँव के प्रत्येक घर में यदि बिजली हो तो मुझे इस बात में कतई आपत्ति नहीं कि वे अपने यंत्रों और हथियारों को बिजली की सहायता से चलायें। ऐसी सूरत में प्रत्येक गाँव में शक्ति गृह (Power house) वैसे ही रहेंगे जैसे उनके चरागाह रहा करते हैं। परन्तु जहां बिजली का प्रबन्ध नहीं, यंत्र नहीं वहां लोग बैठे ठाले क्या करें?

शिक्षा प्राप्त लोगों की उपेक्षा के कारण ही ग्रामों को हानि उठानी पड़ी है। उन्होंने नागरिक जीवन को अपना लिया है। यह ग्राम आन्दोलन और कुछ नहीं है। कुछ सेवा भाव से प्रेरित लोगों में गाँव के प्रेम को उत्पन्न करने, गाँव में बसने, ग्राम के निवासियों की सेवा मार्ग से आत्माभिव्यक्ति करने तथा गाँवों से स्वस्थ सम्पर्क स्थापित करने की चेष्टा है।

ग्राम पंचायतों की फिर से स्थापना हो। भारत के ग्राम सब नगरों की आवश्यकताओं को पूरा करते थे। भारत तभी दरिद्र हो गया जब नगरों ने विदेशी बाजारों का रूप धारण कर लिया और गाँवों में सस्ते मालों को भेज कर उन्हें खोखला करना आरंभ किया।

शहरों और गांवों में एक स्वस्थ और नैतिक सम्बन्ध तभी स्थापित होगा जब कि शहरी लोग उन्हें शोषित करने की स्वार्थपूर्ण भावना का त्याग करेंगे और यह महसूस करेंगे कि जो अन्न, जल और शक्ति उनके द्वारा हमें प्राप्त हो रही है उसका उचित प्रतिदान करना हमारा कर्त्तव्य है। यदि नगर के बालक यह चाहते कि सामाजिक संगठन के इस महत् कार्य में हम अपना पार्ट अदा करें तो जिस प्रणाली से वे शिक्षा प्राप्त करते हैं वह ग्रामों की आवश्यकताओं से सीधा सम्पर्क रखे।

यह ग्राम आन्दोलन जितना ग्राम निवसियों की शिक्षा के लिये उतना ही नगर निवासियों की जागृत के लिए है। शहर के रहने वाले कार्यकर्त्ताओं को ग्रामीण मनोवृति पैदा करनी होगी और ग्रामनिवासियों की तरह रहने की कला सीखनी होगी। इसका यह मतलब नहीं कि वे ग्रामनिवासियों की तरह फाकेकशी पर रहें, पर इतना अवश्य है कि उन्हें अपने रहन सहन के तरीकों में आमूल परिवर्तन करना होगा।

हमें आदर्श ग्राम निवासी बनना होगा। वैसा ग्राम निवासी नहीं जिसकी सफाई के बारे में विचित्र विचार हैं और जो क्या खाय और कैसे खाय इस पर कभी सोचते नहीं। हमें उनकी तरह किसी भांति उबाल कर जिस किस तरह खाकर ज्यों त्यों कर जी नहीं भरलें। हम उन्हें आदर्श भोजन का ज्ञान दें। हम अपनी रुचियों तथा अनरुचियों के हाथ की उन्हें कठपुतली न होने दें पर उनकी जड़ को देखें।

सूर्य की प्रखर किरणों के नीचे परिश्रम करने वाले, झुकी कमर वाले किसानों के साथ हमें तादात्म्य करना होगा और देखना होगा कि हम उसी जलाशय का पानी पीना कहां तक

पसंद करेंगे जिसमें गांव वाले नहाते हैं, अपने कपड़े तथा बर्तन साफ करते हैं, जिसमें उनके मवेशी-गण पानी पीते तथा लोटते रहते हैं। उसी हालत में ही हम जनता के प्रतिनिधित्व का दावा कर सकते हैं और तभी वे हमारी पुकारों पर ध्यान दे सकते हैं।

चूँकि गांवों के आर्थिक संगठन की योजना को भोजन सुधार से आरम्भ किया गया है अतः आवश्यक है कि एक ऐसे सस्ते और सरल भोजन का पता लगाया जाय जिसके द्वारा गांव के रहने वाले अपने खोये स्वास्थ्य का पुनर्लाभ कर सकें। यदि वे अपने भोजन के साथ कुछ हरे शाक और पत्तियों को शामिल करलें तो वे मौजूदा बहुत सी बिमारियों से बच सकते हैं। ग्राम निवासियों के भोजन में पोषक तत्वों का अभाव रहता है जिन्हें वे ताजी और हरी पत्तियों के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। भोजन के संबंध में जो हमारी प्रचलित धारणा है उसमें हरी पत्तियों के उचित प्रयोग से क्रांतिकारी परिवर्तन होने की संभावना है और आज दूध से जो हमें पौष्टिकता प्राप्त है वह उनके द्वारा मिल सकती है।

नगर तो अपनी निगरानी आप कर सकते हैं। हमें गावों की ओर मुड़ना है। हमें उनके मस्तिष्क से उनकी गलत धारणाओं उनके अन्धविश्वासों तथा उनके संकुचित दृष्टिकोण को दूर करना है। इसके लिए उनके बीच रहने, उनके सुख और दुःख के भागी होने, उनमें शिक्षा और ज्ञान के प्रचार करने के सिवा दूसरा उपाय नहीं।

प्रत्येक ग्राम प्रजातन्त्र हो

स्वतंत्रता को नीचे से आरम्भ होना चाहिये। अतः प्रत्येक गांव में पूर्णाधिकार प्राप्त पंचायत होगी। इसका मतलब यह निकलता है कि प्रत्येक गांव को आत्मनिर्भर होना पड़ेगा और उसमें अपने कार्यों को देखभाल करने की ऐसी योग्यता लानी पड़ेगी कि वह सारे संसार के विरुद्ध भी अपनी रक्षा कर सके। उसको इस बात की शिक्षा देनी होगी और इस बात के लिये तैयार करना पड़ेगा कि किसी भी प्रकार के बाह्य आक्रमणों से वह अपनी रक्षा कर सके। अतः अंत में चलकर व्यक्ति ही इकाई बन जाता है। इसका अर्थ यह नहीं कि अपने पड़ोसियों अथवा संसार की ऐच्छिक सहायता उसके लिये ग्रहणीय नहीं होगी। पर यह पारस्परिक शक्तियों का स्वतंत्र और ऐच्छिक स्वाभाविक आदान प्रदान के रूप में होगा। ऐसा समाज उच्च संस्कृत समाज होगा इसमें प्रत्येक व्यक्ति स्त्री-पुरुष यह जानेगा कि वह क्या चाहता है? सबसे ऊपर वह यह जानता रहेगा कि किसी को उस वस्तु को चाहने का अधिकार नहीं जिसे दूसरा उतने ही परिश्रम से प्राप्त नहीं कर सके।

यह स्वाभाविक है कि इस समाज की बुनियाद सत्य और अहिंसा पर पड़ेगी। मेरे जानते ईश्वर में जीवित विश्वास के बिना ऐसा होना संभव नहीं। ईश्वर से मेरा मतलब एक जीवित शक्ति से है जो संसार की सारी शक्तियों में निवास करती है पर किसी पर निर्भर नहीं रहा करती और वह तभी कायम

रहेगी जब सारी दूसरी शक्तियां नष्ट हो जायेंगी। इस ज्योतिमय शक्ति में विश्वास के बिना मैं अपने जीवन की सार्थकता की कल्पना नहीं कर सकता।

असंख्य गांवों को लेकर बने इस संगठन में उत्तरोत्तर प्रवर्द्धमान और विकासोन्मुख वृत्तों का समावेश रहेगा। जीवन एक ऐसे पिरामिड (Pyramid) की तरह नहीं होगा जिसमें उच्चतम शिखर सबसे नीचे वाले पत्थर पर टिका रहता है। पर यह सागर में उठे तरंगावर्तता की तरह होगा। व्यक्ति इसका केन्द्र होगा। वह व्यक्ति गांव के लिए सदा अपने को मिटा देने को तैयार रहेगा, उसी तरह गांव समूहों के लिए मर मिटने को तैयार रहेगा। व्यक्तियों की इकाई से बनी समष्टि में एक जीवनाकार में परिणित हो जायगी। उन व्यक्तियों में अहंभावना नहीं होगी, वे अत्याचारी नहीं होंगे, सदा विनयी होंगे, सदा सागर के वृहद्-वृत की महिमा के भागी रहेंगे क्योंकि वे उसके एक अविभाज्य अंश हैं।

अतएव वृत्त का सबसे बाहरी घेरा अपने अन्दर रहने वाले वृत्त को कुचलने के लिये शक्ति का प्रयोग नहीं करेगा पर अपने अन्दर रहने वाले वृत्त को बल प्रदान करेगा और उनसे ही अपना बल भी प्राप्त करेगा। यहां पर कोई यह कहकर मेरा मजाक उड़ा सकता है कि अरे यह सब खाली पुलाव, इस पर सोचना बेकार है। 'इयक्लिड की बिन्दु को कोई भी मानव शक्ति नहीं बना सकती। पर यदि मानव जाति के लिये उसकी उपयोगिता अमर है तो मेरे चित्र की भी उपयोगिता है। भारत को इस वास्तविक चित्र के लिये ही जीना चाहिये यद्यपि यह चित्र अपनी पूर्णता में भले ही प्राप्त न हो। हमारे सम्मुख अपने आदर्श की सच्ची रूपरेखा तो होनी ही चाहिये। यदि भारत में यह कभी भी अवस्था आयेगी कि प्रत्येक गांव में

प्रजातन्त्र की स्थापना हो तो मैं अपने बनाये चित्र का दावा पेश करता हूँ जिसमें सर्वोत्कृष्ट भी सर्वनिकृष्ट के बराबर होगा अथवा यों कहिये श्रेष्ठ और निकृष्ट का सवाल ही नहीं रहेगा।

इस चित्र में प्रत्येक धर्म के पूर्ण और बराबर स्थान है। हम सब उस महिमामय वृक्ष की पत्तियाँ हैं जिसके तनों को जड़ों से पृथक नहीं कर सकते, जड़ें जो पृथ्वी की तह तक चली गई हैं वायु का प्रचंड से प्रचंड झोंका भी उन्हें हिला नहीं सकता।

इसमें उन यंत्रों का स्थान नहीं जो कारीगरों को बेकार कर देने वाले हैं तथा जिनके द्वारा शक्ति कुछ लोगों के हाथों में केन्द्रित हो जाती है। एक संस्कृत मानव परिवार में काम करने वालों का विशिष्ट स्थान है प्रत्येक यंत्र जो काम करने वालों के सहायक हैं उसका स्थान है। परन्तु मैं अवश्य यह स्वीकार करूं कि मैंने अभी सोचा नहीं है कि वह कौन सा यंत्र है। मैंने ऐसा स्थान सिंगर की सीने वाली मशीन को देने का सोचा है। परन्तु वह तो सरसरी निगाह से उपजा खयालमात्र है। अपने चित्र में रंग भरने की मुझे जरूरत नहीं है। मेरी कल्पना में गाँवों का स्वराज्य इसमें है कि वह पूरा प्रजातन्त्र है। अपनी आवश्यक जरूरतों के लिये अपने पड़ोसियों से पूरा स्वतन्त्र परन्तु जिसमें दूसरे की सहायता की जरूरत है उसमें दूसरों पर निर्भर। अतः प्रत्येक ग्राम का यह सर्व प्रथम काम होगा कि वह अपने भोजन के लिये अन्न और कपड़े के लिये कपास पैदा करे। मैं चाहूँगा कि इसमें मवेशियों के लिये एक स्थान सुरक्षित रहे और सयानों तथा बच्चों के लिये खेल का मैदान रहे। इसके बाद कुछ जमीन बच जाती है तो उसमें ऐसी चीजें पैदा की जा सकती हैं जिनसे रुपया पैदा हो। हाँ, गाँजा, तम्बाकू और अफीम जैसी चीजें नहीं।

हर एक गाँव में एक नाटक गृह, पाठशाला और सार्वजनिक संस्थागार होगा। इसमें जल देने की पूरी व्यवस्था होगी ताकि साफ पानी लोगों को मिल सके। यह नियंत्रित कुओं और तालाबों के द्वारा हो सकता है। बुनियादी शिक्षा की आखिरी कक्षा तक शिक्षा अनिवार्य होगी। यथासंभव सारी कारवाइयां सहयोग पद्धति पर होगी। जिस रूप में जातिप्रथा आज प्रचलित है जिसमें क्रमिक अस्पृश्यता वर्तमान है वह नहीं रहेगी।

सत्याग्रह और असहयोग के साथ मिलकर अहिंसा ग्राम पंचायतों का मुख्य अस्त्र होगा। ग्रामों में एक रजिष्टर होगा जिसमें लोगों के नाम दर्ज रहेंगे और उनमें से लोगों को बारी २ से अनिवार्य रूप से पहरेदार का काम करना होगा। ग्रामों का शासन पांच आदमियों की पंचायत के हाथों में होगा जो प्रतिवर्ष एक निश्चित योग्यता के प्रौढ नर-नारियों के द्वारा निर्वाचित होंगे। उनके पास आवश्यकता के अनुसार सारे अधिकार होंगे। चूँकि आज के अर्थ में दण्ड की व्यवस्था नहीं रहेगी अतः यह पंचायत वर्ष भर के लिए धारा सभा, शासन तथा न्याय संबंधी अधिकारों से परिपूर्ण होगी।

आज भी मौजूदा सरकार के हस्तक्षेप के बिना भी प्रत्येक ग्राम ऐसा प्रजातंत्र बन सकता है क्योंकि सरकार का इन गावों से इतना ही संबंध है कि वह कर वसूल करती है। मैंने यहां इस बात पर विचार नहीं किया है कि पड़ोसी गांवों से एवं केन्द्रीय सरकार से गांवों का संबंध क्या हो। ग्रामीण शासन की रूपरेखा खींचना मेरा उद्देश्य रहा है। यहां पर वैयक्तिक स्वतंत्रता की नींव पर खड़ा प्रजातंत्र का पूर्ण चित्र है। हर एक व्यक्ति अपने शासन का निर्माण करता है। उसके और उसकी सरकार का संचालक सूत्र अहिंसा है। वह और उसका गांव संसार की सारी शक्ति के विरुद्ध भी लोहा ले सकता है।

क्योंकि प्रत्येक ग्राम निवासी का कानून यह है कि वह अपने तथा अपने गांव की इज्जत की रक्षा के लिए मर मिटेगा।

इस तरह के ग्राम की स्थापना में सारा जीवन लग सकता है। प्रजातंत्र और ग्रामीण जीवन का कोई प्रेमी कोई एक गांव ले ले और उसे ही अपनी दुनिया और ध्येय समझे, वह देखेगा कि कितना अच्छा परिणाम निकलता है। उसे गांव के मेहतर, कताई करने वाले, पहरेदार, वैद्य और शिक्षक के रूप में कार्य आरम्भ करना होगा। यदि कोई उसकी बात नहीं सुनता उसे अपनी सफाई और कताई के कार्यों से सन्तुष्ट रहना होगा।

ग्राम प्रदर्शनियाँ

यदि हम चाहते हैं और इस आदर्श में विश्वास रखते हैं कि गांव केवल जीवित भर न रहें किन्तु शक्ति एवं प्रगति के सच्चे केन्द्र बनें तो हमें ग्राम दृष्टिकोण से ही भविष्य पर विचार करना होगा। यदि यह सत्य है तो हमारे ग्रामों की प्रदर्शनी में शहरों की तड़क भड़क की आवश्यकता नहीं। शहरी खेलों और मनोरंजनों की जरूरत नहीं। प्रदर्शनी को तमाशा का रूप नहीं लेना चाहिए और न आमदनी का जरिया बनना चाहिये। इसे व्यापारियों के लिये विज्ञापन का साधन तो कभी भी नहीं बनना चाहिये। यहां पर किसी प्रकार की बिक्री को इजाजत नहीं होनी चाहिये। खादी और ग्राम उद्योगों की बनी चीजें भी यहां नहीं बिकनी चाहिये। प्रदर्शनी को शिक्षा का माध्यम होना चाहिये, आकर्षक होना चाहिये और ऐसा होना चाहिये कि लोगों में कोई उद्योगों को अपनाने की प्रेरणा दे। आज के ग्रामीण जीवन में जो बड़ी २ त्रुटियां हैं उन्हें दिखलाना और उन्हें दूर करने का उपाय बतलाना उनका मुख्य कर्त्तव्य होना चाहिये। उसे यह भी दिखलाना चाहिये कि

ग्रामीण जीवन को कलामय कैसे बनाया जा सकता है ?

आइये देखें यदि ऊपर लिखी शर्तें पूरी हों तो ग्रामीण प्रदर्शनी का क्या होगा ?

१. दो तरह के गांव दिखलाये जांय—एक तो जैसा आज है दूसरा उन्नत। उन्नत गांव एक दम साफ सुथरा होगा। इसके मकान, सड़कें, आसपास की जमीन, मैदान सब साफ सुथरे होंगे। मवेशियों की दशा भी उन्नत होगी। किताबें, चार्ट, तस्वीरें रहनी चाहिये जो यह बतायें कि कौन उद्योग से और कैसे पैसे पैदा किये जा सकते हैं ?

२. इसे यह अवश्य बतलाना चाहिये कि ग्राम उद्योगों को कसे संचलित किया जाय, कहां से जरूरी यंत्र लाये जांय और उन्हें कैसे बनाया जाय ? हरेक उद्योग की वास्तविक कार्य प्रणाली बतलाई जाय। इनके साथ निम्न लिखित बातें भी रहनी चाहिये—

(१) आदर्श ग्रामीण भोजन।
(२) ग्राम उद्योग और यंत्र उद्योगों की पारस्परिक तुलना।
(३) पशुपालन की आदर्श शिक्षा।
(४) कला विभाग।
(५) आदर्श ग्रामीण पाखाना।
(६) जमीन की खाद और रसायनिक खाद की पारस्परिक तुलना।
(७) मवेशियों कि हड्डियों, चमड़ों इत्यादि की उपयोगिता।
(८) ग्रामीण संगीत, संगीत यंत्र, ग्रामीण नाटक।
(९) गामीण खेल कूद, अखाड़े और अन्य प्रकारके व्यायाम.
(१०) नई तालीम।

(११) ग्रामीण दवाइयें।
(१२) ग्रामीण प्रसूतिका गृह।

आरम्भ में बताये गये कार्यक्रम को ध्यान में रखकर इस सूची में वृद्धि की जा सकती है। जो कुछ बताया गया है वह केवल मार्ग प्रदर्शन के लिये है उसे व्यापक नहीं समझना चाहिये। मैंने चर्खे और अन्य ग्राम उद्योगों की चर्चा नहीं की है। वे तो अनिवार्य हैं ही। उनके बिना प्रदर्शनी एक दम बेकार है।

नागरिक उत्तरदायित्व

मैं विश्वनाथजी के मंदिर में दर्शनार्थ गया……और जब मैं उन गलियों में घूम रहा था ये भाव मेरे मन में उगे। यदि कोई अनजान व्यक्ति आसमान पर से इस महत्त्व मन्दिर पर टपक पड़े और हम हिन्दुओं के ऊपर विचार करे तो उसे हमें निन्दार्त ठहराये बिना रहा जायगा? यह महत्त्व मंदिर क्या हमारे ही चरित्र का प्रतिबिम्ब नहीं है? मैं एक हिन्दू के नाते बड़े ही भावपूर्ण शब्दों में बोल रहा हूँ। क्या यह उचित है ऐसे महिमामय मंदिर की गलियां इतनी गन्दी हों? इसके चारों तरफ घर ज्यों त्यों करके बना लिए गए हैं। गलियां टेढी मेढी और संकरी हैं। यदि हमारे मंदिर भी एक आदर्श स्वच्छ कमरे नहीं बनते तो हमारा स्वराज्य क्या बन सकेगा? ज्योंही भारत से अंग्रेज चले गये त्योंही हमारे मंदिर पवित्रता सफाई और शान्ति के निवासस्थान हो जायेंगे क्या?

प्रत्येक शहर के दो भाग हैं। सैनिक छावनी तथा वास्तविक शहर। शहर तो दुर्गन्धमय गर्त है। पर हम में से बहुत लोग शहरी जीवन चाहते हैं तो वहां आराममय झोंपड़ों के जीवन की स्थापना नहीं हो सकती। यह सोच कर दुख होता है कि भारत में बम्बई जैसे शहर में सड़कों पर चलने वालों को बराबर यह भय बना रहता है कि ऊँची मंजिल वाले मकानों पर रहने वाले कहीं उन पर थूक न दें। मुझे रेल से यात्रा काफी करनी पड़ती है। मैं तीसरे दर्जे के मुसाफिर की कठिनाइयों को जानता

हूं। पर इस कठिनाई की सारी जिम्मेदारी रेलवे के अधिकारी वर्ग पर ही नहीं है। हम सफाई के साधारण ज्ञान से भी अपरिचित हैं। हम गाड़ी की सतह पर जहां कहीं थूक देते हैं और इस बात का ख्याल भी नहीं करते कि वहां लोग सोते भी हैं। हम लोग उनको किस तरह काम में लायें इस पर विचार भी नहीं करते; नतीजा होता है कमरे में अकथनीय गंदगी। तथाकथित ऊँचे दर्जे के मुसाफिर अपने कम भाग्य वाले भाइयों को धमकाते हैं। उनमें विद्यार्थी भी हैं। अपने स्वराज्य की ओर उन्नति करते हमें ये सब आदतें दूर करनी ही पड़ेंगी।

यदि भिष्टा का उचित उपयोग किया जाय तो लाखों रुपये की खाद मिले और अनेक रोगों से मुक्ति भी। हम अपनी बुरी आदतों के कारण अपनी पवित्र नदियों के तट को गंदा कर देते हैं और वे तट मक्खियों के उत्पादन स्थान बन जाते हैं। नतीजा यह होता है कि हमारी असावधानी से खुले छोड़े हुए भिष्टा पर वे मक्खियां बैठती हैं और वहां से उड़कर मेरे स्नान-पूत शरीर पर बैठकर गन्दा करती हैं। इस महान अनर्थ से बचने का साधारण उपाय एक छोटी कुदाली है। जहां तहां भिष्टा कर देना, नाक को झाड़ना या सड़कों पर थूकना ईश्वर और मानवता दोनों के प्रति अपराध करना है। और इससे पता चलता है कि आप दूसरों के प्रति कितने उदासीन हैं। वह आदमी जो अपने गलीज को खुला छोड़ देता है दण्ड का भागी है, चाहे वे जंगल में ही क्यों न रहे।

उन जरूरतों के प्रति नजर अन्दाज कर लेना बेकार है जो चारों ओर हमें घूर रही हैं। हमारे अछूत भाई जिस भाग में रहते हैं उन्हें साफ कर लेना ही काफी नहीं है। वे बुद्धि संगत बात कहने और समझाने बुझाने पर मान सकते हैं या मुझे

कहना ही पड़ेगा कि तथाकथित ऊँचे दर्जे के व्यक्ति भी बुद्धि संगत और समझ में आने वाली बातों के मानने में उतने ही तत्पर नहीं और नागरिक जीवन के लिये जिन स्वास्थ्य कर नियमों की आवश्यकता है उन्हें पालने में दत्त-चित्त नहीं। हम ग्रामों में बहुतसी बातें कर सकते हैं पर ज्योंही हम भीड़ से भरी गलियों में जाते हैं जहां सांस लेने की भी काफी हवा नहीं, जीवन बदल जाता है और हमें तुरन्त ही एक दूसरे प्रकार के नियमों का पालन करना पड़ता है। क्या हम ऐसा करते हैं? भारत के प्रत्येक प्रधान नगर के केन्द्र की जो अवस्था है उसका उत्तरदायित्व-भार म्यूनिस्पलिटी पर रख देने से कोई काम नहीं सधता। इन नगरों की सफाई सुधार की बात असंभव है यदि हम म्यूनिस्पलिटी से सारी बातों की आशा लगाये रहें और स्वयं कुछ न करें।

इसका अर्थ यह नहीं कि म्यूनिस्पलिटी को हम उत्तरदायित्व और उनकी त्रुटियों के दोष से मुक्त कर देते हैं। मेरा विचार है कि म्यूनिस्पलिटियों में भी सुधार की आवश्यकता है। संगठित जीवन की सर्व-प्रथम आवश्यकता है कि नगर निवासियों को शुद्ध जल की व्यवस्था की जाय और पानी का हौज एक दम स्वच्छ तथा सुन्दर हो।

मैं अपने को संगठित जीवन का प्रेमी समझता हूँ। मैं समझता हूँ किसी म्यूनिस्पलिटी का सलाहकारी सदस्य होना मनुष्य का असाधारण संयोग है। उन्हें स्वार्थ भाव से प्रेरित हो अपने दफ्तर में जाने का साहस भी नहीं करना चाहिये। शुद्ध सेवा-भाव से ही उन्हें अपने काम में हाथ लगाना चाहिये। उन्हें भंगी कहलाये जाने में गर्व का अनुभव होना चाहिये। हमारी मातृ भाषा में म्यूनिस्पलिटी के लिये कचरापट्टी कहा जाता है। यह एक बड़ा ही अर्थगर्भित शब्द है। इसका अर्थ है सफाई

विभाग। यदि म्यूनिस्पलिटी सामाजिक जीवन का प्रमुख सफाई विभाग नहीं बना तथा नगर की बाहरी सफाई ही नहीं नागरिकों की सफाई की सेवा भावना से प्रेरित नहीं तो वह कुछ नहीं है।

यदि मैं किसी म्यूनिस्पलिटी या स्थानीय बोर्ड का कर दाता होऊं तो एक पाई भी अतिरिक्त कर देना स्वयं बन्द करदूं और दूसरों को बन्द कर देने की सलाह दूँ, यदि हमारे दिये पैसे चौगुने रूप में हमारे पास लौट नहीं आते। जो लोग प्रतिनिधि के रूपमें बोर्ड या म्यूनिस्पलिटी जाते हैं वे गौरव प्राप्त करने अथवा पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता करने नहीं जाते परन्तु प्रेम पूर्वक सेवा करने जाते हैं। इसके लिये रुपयों की जरूरत नहीं। हमारा देश दरिद्र है। यदि हमारे म्यूनिस्पलिटी के सदस्यों में वास्तविक सेवा भाव है तो वे स्वयं अवैतनिक झाड़ू देने वाले भंगी, और सड़क पर काम करने वाले बन जायेंगे और ऐसा करके वे गर्व का अनुभव करेंगे। वे दूसरे साथियों को अपने साथ सहयोग करने के लिये आमंत्रित करेंगे चाहे वे कांग्रेस के टिकट पर भले ही नहीं गये हों और यदि उनमें अपने में तथा अपने ध्येय में विश्वास है तो उनकी पुकार व्यर्थ न होगी। इसका महत्व यह होता है कि म्यूनिस्पलिटी के कार्य कर्त्ता को सारा समय देना होगा। उसका अपना स्वार्थ नहीं होगा। दूसरा कदम यह होगा कि सारी प्रौढ जन संख्या को स्थानीय बोर्ड तथा म्यूनिस्पल क्षेत्र में शामिल किया जाय। सबसे कहना होगा कि वे म्यूनिस्पलिटी की कारवाइयों में हाथ बटायें। बाकायदे एक रजिस्टर रखना होगा। जो गरीब हैं, पैसे नहीं दे सकते पर देह से हट्टे कट्टे हैं उन्हें निशुल्क परिश्रम करना होगा।

नवयुवकों को आह्वान

मेरी सारी आशायें देश के नवयुवकों पर लगी हैं। उनमें जो कुछ दुर्गुणों के शिकार हो गये हैं वे स्वभावतः बुरे नहीं हैं। वे अपनी अनजान में बेतरह फँस गये हैं। उन्हें यह अवश्य महसूस करना चाहिए कि एक पूर्ण रूप से अनुशासित जीवन ही उनको तथा देश को विनष्ट होने से बचा सकता है।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि जब तक वे भगवान को सामने नहीं रखते और प्रलोभनों से बचे रहने में उसकी सहायता नहीं मांगते तब तक कितना भी सूखा अनुशासन उनको अधिक लाभप्रद नहीं हो सकता। ईश्वर को सामने रखने का अर्थ यह कि हम महसूस करें कि वह हमारे हृदय सिंहासन पर आसीन है ठीक उसी तरह जिस तरह बिना किसी प्रदर्शन के भी बालक मां के प्यार का अनुमान करता है।

नवयुवक गण जो आगामी कल के सृजनहार होने का दावा करते हैं उन्हें राष्ट्र का नमक (प्राण) होना चाहिए। यदि नमक अपना गुण छोड़ दे तो भला उसे कैसे लावण्य बनाया जा सकता है?

सारे संसार के नवयुवक भाव प्रवण होंगे ही। अतः यह अनिवार्य है कि अध्ययन काल में अर्थात २५ वर्ष की अवस्था तक पहले से जान बूझकर नियमित ब्रह्मचर्य के जीवन को अपनाया जाय।

निर्दोष तारुण्य एक अमोल थाती है इसे क्षणिक उत्तेजनाओं

के भावावेश में आकर आनन्दाभास के लिए बरबाद नहीं करन
चाहिये।

नवयुवकों! मेरा तुम लोगों से कहना है कि गांवों में जाओ
और वहीं जम कर बैठ जाओ, उनके मालिक या उद्धारकर्त्त
के रूप में नहीं परन्तु उनके नगण्य सेवकों के रूप में। उन्
बताओ कि उन्हें क्या करना चाहिए और अपने दैनि
व्यवहारों और रहने के ढँग से प्रेरित करो कि वे अपने रह
सहन में किस तरह परिवर्तन कर सकते हैं। केवल भावावे
से काम नहीं चलेगा। केवल भाप का कोई महत्व नहीं पर व
जब उचित नियंत्रण में रखा जाता है तो एक भारी शक्ति क
रूप धारण कर लेता है। मैं तुम को देवदूत के रूप में भार
की क्षतविक्षत आत्मा के लिए शान्तिप्रद मरहम को लेक
आगे कदम रखते देखना चाहता हूँ।

ग्रामों के कार्य से हम भयभीत होते हैं। शहर में हम जन्
और पले हैं। हमारे लिए ग्रामीण जीवन को अपनाना कठि
प्रतीत होता है। बहुत बार हमारा शरीर कठिन जीवन
अनुरूप अपने को अक्षम पाता है। यदि हम चाहते हैं कि
जनता के स्वराज्य की स्थापना करें, एक वर्ग के स्थान पर दूस
वर्ग का शासन नहीं-यह तो और भी बदतर होसकता है-तब इ
कठिनाई का वीरता पूर्वक सामना करना होगा। अब त
हजारों की संख्या में ग्राम निवासी इसलिये मरते रहे हैं कि ह
जी सकें। अब हमें मरना पड़ेगा ताकि वे जी सकें। परन्तु दो
मरण विधि में महान अन्तर होगा। ग्राम निवासियों ने अप
जानें दी हैं पर अनिच्छा पूर्वक और अनजानते। इस जब
दस्ती त्याग ने हम लोगों को नीचे गिराया है। यदि आ
मरण को जान बूझ कर और इच्छापूर्वक वरण करें तो हमा
त्याग हमें तथा सारे राष्ट्र को उन्नत कर सकता है। यदि ह

स्वतंत्र और आत्म-सम्मान पूर्वक राष्ट्र के रूपमें जीवित रहना है तो आवश्यक त्याग से हमें मुख नहीं मोड़ना होगा।

भारत की आत्मा शहरों में नहीं वरन गांवों में निवास करती है। यदि शहर के निवासी यह दिखलाना चाहते हैं कि वे ग्रामीणों के लिये तो जीना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि वे अपने साधनों का अधिकांश गरीबों की दशा सुधारने और उनके राहत में लगायें।

हमें उन पर हकूमत नहीं करनी है, हमें उनका सेवक बनना होगा। जब शहर के लोग यह महसूस करेंगे कि उन्हें गरीबों के उपकारार्थ जीना है तो उन्हें अपने महलों, संस्थाओं और अपने जीवन को तो गांवों के अनुरूप कुछ न कुछ बताना ही होगा।

ग्राम कार्यकर्त्ता कौन बन सकता है? जो कार्य उसे करना है उसके लिये यह आवश्यक है कि उसे चर्खा कातने का सैद्धान्तिक और व्यवहारिक ज्ञान हो। यदि कार्यकर्त्ता को अपने गांव में आदर्श जीवन व्यतीत करना हो तो उसे सफाई के सिद्धान्तों का जानना भी आवश्यक है और उसे चाहिये कि ग्राम के सामने सफाई का जीता जागता आदर्श उपस्थित करें। रोजमर्रे के रोगों की घरेलू दवाइयों का भी उसे ज्ञान होना चाहिये। उसे थोड़ा बही खाते रखने का भी ज्ञान होना चाहिये। सबसे बढ़कर शुद्ध और पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहिये ताकि वह ग्रामीणों का विश्वास भाजन बनसके और उनपर अपने आदर्शों की छाप बैठा सके। यह स्वाभाविक है कि ग्राम कार्य कर्त्ता को सीधा सादा और आत्म संतुष्ट रहना चाहिये। यह प्रणाली देखने में जरा कड़ी जरूर मालूम पड़ती है पर एक धीर विद्यार्थी के लिये कठिन नहीं। आचरण की शुद्धता तो ऐसे कार्यों के लिये पहली शर्त है। वह ग्राम कार्यकर्त्ता जो सफाई के नियमों को

नहीं जानता और स्वयं उन पर अमल नहीं करता तथा छोटी २ बीमारियों की घरेलू दवाइयों का ज्ञान नहीं रखता वह तो किसी न किसी बिमारी का शिकार बनेगा ही।

हमें विविध रोगों से जूँझना हैं जिन्होंने ग्रामों को जकड़ रखा है (१) संगठित रूप से सफाई का अभाव है (२) दोष पूर्ण भोजन है (३) मानसिक शैथिल्य। उनका राज्य है। अपनी ही उन्नति में कोई दिलचस्पी नहीं। वे आधुनिक सफाई के तरीकों की कद्र नहीं करते। वे जमीन जोत भर लेते हैं और जिस परिश्रम के वे अभ्यस्त हैं वह कर भी लेते हैं पर उससे आगे बढने की परवाह नहीं करते। ये कठिनाइयाँ वास्तविक हैं। परन्तु उनसे हमें तो किंकर्त्तव्य विमूढ नहीं बनाना चाहिये। हमें अपने मिशन में अखण्ड विश्वास होना चाहिये। हमें लोगों से धैर्य से काम लेना चाहिये। हम लोग ग्राम कार्य में स्वयं नवसिखुए हैं। हमें ऐसे रोग से पाला पड़ा है जो दीर्घ-काल के कारण मूलबद्ध हो गया है। धैर्य से हम विपत्तियों के पहाड़ों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। हमारी हालत उस नर्स की सी है जो उस रोगी को छोड़ नहीं सकती जिसे असाध्य बिमारी लग गई।

इसका एक मात्र उपाय यही है कि उनके बीच में जम कर बैठ जाया जाय और उनके भंगी, उनके नर्स, उनके सेवक के रूप में दृढ विश्वास से काम करते चला जाय। हम इन पर अनुग्रह का भाव नहीं रखें और अपनी सारी धारणाओं और पक्षपात भाव को दूर करें। एक २ क्षण के लिये स्वराज्य को भी भूल जायं और पग पग पर अत्याचार करने वाले मालदारों को तो भूल ही जायं। बहुत से लोग हैं जो इन बड़ी समस्याओं को हल करने में लगे हैं। हम ग्रामों की छोटी छोटी समस्याओं में हाथ लगावें जिसकी आज बड़ी आवश्यकता है और जिसकी

जरूरत तब भी बनी रहेगी जब हम अपने मकसद पर पहुँच गये रहेंगे। ग्राम का कार्य जब सफल होगा तभी हम अपने ध्येय के समीप पहुँच सकेंगे। ज्योंहि आप भारतीय किसानों से बातें करनेल गते हैं आपको उनके मुखसे बड़ी युक्तियुक्त बातें सुनने को मिलती हैं। उनके बाहरी रूखे कलेवर में अध्यात्मिकता का श्रोत सोया पड़ा है। मैं इसे ही संस्कृति कहता हूँ। आप पश्चिम के देशों में ऐसी बातें नहीं पायेंगे। आप यूरोप के किसानों से बातें करें तो पता लग जायेगा कि उनमें आध्यात्मिकता के लिये कोई दिलचस्पी नहीं है।

जहां तक भारतीय ग्रामीण का संबंध है उसकी बहरी सूखी पपड़ी की तह में अति प्राचीन संस्कृति छिपी पड़ी है। आप उस पपड़ी को हटा दीजिये, उसकी गरीबी और निरक्षरता को दूर कर दीजिये आप देखेंगे कि सुसंस्कृत, सभ्य और स्वतंत्र नागरिक का आदर्श क्या होता है?

ग्राम कार्य का अर्थ है वास्तविक शिक्षा। केवल लिख पढ भर लेने की योग्यता नहीं परन्तु इस बात का ज्ञान कि चिन्ताशील प्राणी मनुष्य के जीवन की वास्तविक आवश्यकतायें क्या हैं।

एक सुरुचि पूर्ण गृह के समना दूसरा स्कूल नहीं और ईमानदार और सदाचारी पिता-माता की तरह दूसरा गुरु नहीं। आधुनिक शिक्षा ग्रामीणों के लिये व्यर्थ भार है। उनके बालकों को कभी भी वह प्राप्त नहीं और भगवान को धन्यवाद है कि यदि उनको एक अच्छे गृह की शिक्षा प्राप्त है तो इसका अभाव उनको कभी भी नहीं खलेगा। यदि एक ग्राम कार्यकर्त्ता स्वयं सुरुचिपूर्ण व्यक्ति नहीं और उसमें एक सुरुचिसम्पन्न गृह चलाने की योग्यता नहीं तो अच्छा है कि वह एक ग्राम कार्य-

कर्त्ता के गौरव को प्राप्त करने की आकांक्षा छोड़दे। उनको इसबात की आवश्यकता नहीं वे थोड़ा बहुत पढ लिख लें परन्तु उन्हें अपने आर्थिक जीवन और उसे सुधारने का ज्ञान होना चाहिये। आज वे एक यंत्र की तरह काम करते चले जा रहे हैं। अपनी परिस्थितयों के उत्तरदायित्व का उन्हें ज्ञान नहीं और कार्य का आनन्द उनको छूता नहीं।

यह पता लगाने की कोशिश करना बेकार है कि भारत की ऐसी दशा सदा से रही है क्या? यदि उसकी दशा इससे अच्छी कभी नहीं रही तो यह हमारी प्राचीन संस्कृति पर कलंक है जिसका हमें आज इतना गर्व है। यदि उसकी अवस्था अच्छी नहीं रही है तो यह कैसे सम्भव है कि इन शताब्दियों से हमारी आंखों के सामने होने वाली अधोगति के बावजूद भी कैसे जीते रहे सके हैं? प्रत्येक देश प्रेमी के सामने प्रश्न यह है कि इस बरबादी को कैसे रोका जाय अथवा यों कहिये कि ग्रामों का पुनर्निर्माण किस तरह इसमें किया जाय कि शहर की तरह ही यहां पर भी लोग सुख पूर्वक रह सकें। सचमुच ही यह समस्या प्रत्येक देश भक्त के सामने है। हो सकता है गांव की समस्या ला इलाज हो; ग्रामीण सभ्यता के दिन लद गये हों और ७ लाख ग्रामों को ७०० शहरों के लिये स्थान न देना पड़े जिनमें ३० करोड़ नहीं परन्तु ३ करोड़ मनुष्यों की आबादी हो। यदि भारत के भाग्य में यह बदा ही हो तो भी यह अवस्था एक दिन में नहीं आने की। बहुत से ग्रामों तथा उनके निवासियों को नष्ट करने में और बाकी बचे लोगों को शहर और शहरी के रूप में परिणित करने में समय लगेगा।

स्वदेशी का सिद्धान्त

स्वदेशी की भावना वह भावना है जो हमें दूर के वातावरण को छोड़कर समीप के वातावरण से काम लेना तथा उसकी सेवा करने की बात सिखाती है। परिभाषा के अनुरोध से मैं यह कहूँगा कि हमारा धर्म परंपरागत और हमारे माता-पिता का ही धर्म रहेगा। ऐसा करना अपने पास के धार्मिक वातावरण का ही उपयोग करना होगा। पर यदि इसमें कोई त्रुटि दिखे तो उसे दूर कर इसकी सेवा करनी चाहिये। राज नीति के क्षेत्र में भी हमें अपनी स्वदेशी संस्थाओं से ही काम लेना चाहिए और उनके दोषों को दूर कर उनकी सेवा करनी चाहिये। अर्थ-शास्त्र के क्षेत्र में हमें अपने पड़ोसी की बनाई चीजों का व्यवहार करना चाहिये और जहां उन उद्योगों में कुछ कमी दिखलाई पड़े तो उन्हें दूर कर उनको और भी उन्नत करना चाहिए। मेरा तो कहना यहां तक है कि यदि स्वदेशी को व्यवहार में लाया जाय तो यहां पर स्वर्ग बन सकता है।

ऊपर जो स्वदेशी की तीन शाखायें बताई गई हैं उन पर विचार करें। हिन्दू धर्म एक गतानुगतिक धर्म बन तो गया है परन्तु साथ ही अपनी स्वदेशी भावना के कारण बड़ा शक्ति-शाली भी। यह बड़ा ही सहिष्णु धर्म है क्योंकि इसमें मत परिवर्तन करा लेने का दुराग्रह नहीं है। प्राचीन काल से आज की घड़ी तक अपने व्यापक स्वरूप के कारण हिन्दू धर्म विकास धर्मी व संवर्धनशील रहा है। लोगों का ख्याल है कि इसने

बौद्ध धर्म को खदेड़ कर भारत की भूमि से बाहर किया है, पर मेरे जानते यह लोगों की गलत धारणा है। ठीक इसके विपरित हमने तो बौद्ध धर्म को आत्मसात कर लिया है। स्वदेशी भावना के कारण ही एक हिन्दू धर्म परिवर्तन नहीं करता। यह कोई जरूरी नहीं है कि वह अपने धर्म को सर्वश्रेष्ट समझता हो पर वह जानता है कि वह आवश्यक परिवर्तनों के द्वारा इसका संशोधन कर सकता है। जो बात हिन्दू धम के लिए कही गई है वह संसार के अन्य धर्मों पर भी लागू है। अन्तर केवल यह है कि यह बात हिन्दू धर्म के लिए विशेष रूप से सत्य है। जो बात मैंने कही है उसमें कुछ भी सत्यता है तो भारत की मिशनरी संस्थाओं से एक बात कहनी है। जो कुछ उन्होंने भारत के लिए किया है और कर रहे हैं उसके लिये भारत उनका कृतज्ञ है। पर यदि वे मत परिवर्तन कराने का आग्रह छोड़दें और परोपकार-कार्य तक ही अपने को सीमित रखें तो क्या वे ईसाई धर्म की अधिक सेवा नहीं करेंगे और भारत का अधिक हित नहीं करेंगे ?

स्वदेशी भावना का अनुकरण करते मैं पाता हूँ कि स्वदेशी संस्थायें और ग्राम-पंचायत मेरा ध्यान आकर्षित करती हैं। भारत वास्तविक अर्थ में प्रजातंत्र का उपासक है और यही कारण है कि इतने धक्कों के बावजूद भी आज जीता है। राजे और सेठ साहूकार, चाहे वे स्वदेशी हों या विदेशी, उन्होंने सिवा कर उगाहने के ठेठ जनता से कुछ भी सम्पर्क नहीं बढाया है। जनता जैसे को तैसा देकर फिर अपनी इच्छानुसार बर्तती रही हैं। जाति-पांति के विशाल संगठन से धार्मिक काम ही नहीं राजनैतिक कार्य भी सिद्ध होते थे। जाति संगठन के द्वारा वे अपने अन्दरूनी मामलों को तय करते थे और राजशक्ति के अत्याचारों का सामना करने में भी उसका उपयोग करते थे।

उस जाति के संगठन की प्रतिभा में तो कोई संदेह नहीं किया जा सकता जिसने जाति प्रथा के द्वारा ऐसे आश्चर्य जनक संगठन का काम लिया था। आप हरिद्वार के कुम्भ मेले को देखें। आप को पता चल जायगा कि वह संगठन कितना कौशल पूर्ण है जिसके द्वारा लाखों तीर्थ यात्रियों की आवश्यकतायें पूरी की गई हैं और यह भी नहीं मालूम होता कि इसके लिए कोई प्रयत्न भी किया गया। तिस पर भी यह कहना फैशन हो गया है कि हममें संगठन की योग्यता नहीं। हां, यह उनके लिए ठीक हो सकता है जो नई परंपरा के बीच ही फूले फले हैं।

स्वदेशीभाव से करीब नाता तोड़ लेने के कारण हमें बड़ी ही विघ्न बाधाओं से होकर गुजरना पड़ा है। हम शिक्षित लोगों ने एक विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षापाई है। अतः जनता को प्रभावित नहीं कर सके हैं। हम चाहते तो हैं कि जनता के प्रतिनिधि बने पर सफल नहीं होते। वे एक अंग्रेज अफसर को जितना जानते पहचानते हैं उससे अधिक हमें नहीं जानते पहचानते। उनकी आकांक्षायें हमारी अपनी नहीं बन सकती। अतः बीच में खाई पड़ गई और आप देखेंगे कि संगठन में कमी नहीं है पर प्रतिनिधिगण और जिनका प्रतिनिधित्व किया जाता है उसमें खाई पड़ गई है। यदि गत पचास वर्षों में अपनी भाषा में हमारी शिक्षा हुई होती तो हमसे बड़े बूढ़, हमारे पड़ोसी, हमारे नौकर सब कोई उस ज्ञान के सरभागी हो सकते। बोस और राय के आविष्कार रामायण और महाभारत की तरह ही घर घर की संपत्ति होते। जनता के लिये तो ये आविष्कार वैसे ही है जैसे कि एक विदेशी के द्वारा किये गये अविष्कार। यदि शिक्षा देशी भाषा में हुई होती तो मैं साहस के साथ कहता हूँ कि जनता आश्चर्यजनक रूप में समृद्ध हुई होती। ग्रामों की सफाई वगैरह की समस्या आज से बहुत पहले हल हो

गई होती। आज ग्राम की पंचायतें जीवित शक्ति के रूप में होती और भारत अपनी आवश्यकता के अनुसार स्वराज्य का सुख भोगता रहता और अपनी भूमि पर ही इस कठिन संगठित हत्या का दृश्य उसे देखना नहीं पड़ता। खैर अब भी अवसर है कि वे अपनी कमियों को पूरा करलें।

अब स्वदेशी की अन्तिम शाखा पर आइये। जनता की गरीबी का बहुत कुछ कारण यह है कि हमने आर्थिक और औद्योगिक क्षेत्र से स्वदेशी से नाता तोड़ लिया है। यदि विदेश से व्यापार की एक चीज भी नहीं आई होती तो आज भारत में दूध और मधु की धारा बहती रहती। पर भाग्य में तो कुछ दूसरा ही था। हम जैसे लालची थे वैसा ही इंगलैंड भी। भारत और इग्लैंड का संबंध स्पष्टतया एक गलती पर कायम था पर यहां रहने के बारे में उसे गलत फहमी नहीं। उसकी आम घोषणा है जनता की थाती के रूप में ही उसने भारत को अपने पास रखा है। यदि यह ठीक है तो लंकाशायर को अलग रहना ही पड़ेगा। और यदि स्वदेशी का सिद्धान्त ठीक है तो लंकाशायर को अलग हो जाने में उसकी क्षति नहीं होगी। हो सकता है आरंभ में उसे कुछ कष्ट हो। स्वदेशी आंदोलन को बदला लेने की भावना से उठाये गये अस्त्र के रूप में नहीं देखता। मेरे लिये यह एक धार्मिक सिद्धान्त है जिसका पालन सभी को करना चाहिये। मैं अर्थशास्त्री तो नहीं हूँ पर मैंने किताबें पढी हैं जिनमें बतलाया गया कि इंगलैंड बड़ी ही आसानी से अपनी जरूरत की चीजों को उत्पन्न करने वाला आत्मनिभर देश बन सकता है यह बात हास्यास्पद हो सकती है। इसकी सत्यता के विरुद्ध सबसे जबरदस्त प्रमाण यह है कि इंगलैंड संसार के उन देशों में से एक है जो सबसे अधिक माल बाहर से मंगवाता है। परन्तु अपने लिये जीने के पहले भारत लंकाशायर के लिये

नहीं जी सकता। वह अपने लिये तभी जी सकता है जब वह अपनी जरूरत की चीजें अपनी ही सीमा के अन्दर पैदा कर सके और उसे पैदा करने में सहायता दी जाय। उससे इस बात की जरुरत नहीं और उससे चाहिये भी नहीं कि वह झगड़े, ईर्षा और बहुतसी अनेक बुराइयों को पैदा करने वाली पागल और नाशकारी प्रतिद्वन्द्विता के चक्कर में उसे घसीटा जाय। परन्तु उसके धन सेठों को इस विश्व व्यापी प्रतिद्वन्द्विता में भाग लेने से कौन रोके? कानून तो उन्हें नहीं रोक सकता पर इस ओर जनमत और उचित शिक्षा प्रचार बहुत कुछ काम कर सकती है। कर्घा-उद्योग मृत-प्राय हो चुका है। मैंने अपने भ्रमणों में जहां तक हो सका है अधिक से अधिक चर्खा कातने वालों से मिलने की कोशिश की है और यह देख कर मेरे दिल में बहुत सदमा पहुँचा है कि उन्होंने कितना खोया है और उन्नतिशील और प्रतिष्ठित पेशे वाले परिवारों ने किसी समय के उन्नत और गोरवान्वित पेशे से हाथ खींच लिया है।

मान लीजिये कि हमारे ऐसे बहुत से पड़ोसी हैं जो एक भद्र पेशे की खोज में हैं। यदि हम स्वदेशी व्रत के सच्चे पालक हैं तो हमारा और आपका यह कर्तव्य है कि ऐसे पड़ोसियों को ढूँढ निकालें जो हमारी जरूरतें पूरी कर सकते हैं। जहां उन्हें यह मालूम नहीं कि जरूरत की चीजों को किस तरह पूरा किया जाय वहां हम उन्हें पूरा करने का तरीका बतलावें। तब भारत के सब गांव एक स्वतंत्र भाग्य-निर्भर इकाई के रूप में होंगे। वे केवल ऐसी ही चीजों का आदान प्रदान करेंगे जो वे स्वयं दूसरे नहीं पैदा कर सकते। ये सब बातें व्यर्थ सी लग सकती हैं। पर भारत ऐसा ही विचित्र देश है। प्यास से गला सुखाकर मारना व्यर्थ है जब कि एक सहृदय मुसलमान शुद्ध जल देने को तैयार है पर यह बात सच है कि हजारों हिंदू

प्यास से मरजाना पसन्द करेंगे पर मुसलमान के घर का पानी नहीं पियेंगे। इन्हीं आदमियों को एक बार यदि विश्वास जम जाय कि उनके धर्म के अनुसार भारतवर्ष में बने वस्त्र को पहनना और यहीं के उपजे अन्न का खाना उचित है तो वे कोई दूसरा वस्त्र पहनना या अन्न खाना अस्वीकार कर देंगे।

भगवद्गीता में एक श्लोक है जिसका स्वतंत्र अनुवाद यों हो सकता है, जो आचरण बड़े लोग करते हैं उसी का अनुकरण जनता करती है। इस बुराई को दूर करना सहज है यदि समाज के विचारशील व्यक्ति, कुछ असुविधायें उठाकर भी, स्वदेशी व्रत धारण करें। जीवन के किसी विभाग में कानून के हस्तक्षेप से मुझे घृणा है। ज्यादा से ज्यादा इसको कम बुरी बुराई के रूप में ही ग्रहण किया जा सकता है। परन्तु विदेशी चीजों पर कड़ा आयत-कर लगाने को सहन करूँगा, उसका स्वागत करूँगा, इतना ही नहीं उसके लिये प्रयत्न भी करूँगा। नेटाल एक ब्रिटिश उपनिवेश है। उसने अपने शक्कर की रक्षा मारीशास नामक एक दूसरे उपनिवेश से आने वाली शक्कर पर कर लगा कर की है। इंगलैंड ने भारतवर्ष पर जबरन स्वतंत्र व्यापार लाद कर उसके प्रति अपराध किया है। यह इंगलैंड के लिए भोजन रहा हो पर भारत के लिये विष प्रमाणित हुआ है।

यह कहा गया है कि अपने आर्थिक जीवन में किसी तरह स्वदेशी व्रत धारण करना भारत के लिये सम्भव नहीं है। जो लोग ऐसा तर्क करते हैं वे स्वदेशी को जीवन के सिद्धान्त के रूप में नहीं देखते। उनके लिये तो यह महज एक देश सेवा कार्य है जो त्याग करने पर आ पड़े तो छोड़ा भी जा सकता है। पर जिस स्वदेशी की बात मैंने कही है वह एक धार्मिक व्रत है जिसको व्यक्ति कभी भी छोड़ नहीं सकता चाहे उसे कितना ही शारीरिक कष्ट उठाना पड़े। यदि स्वदेशी का जादू सवार है

तो आलपिन या सुई से वंचित होना कोई भयका कारण नहीं क्योंकि वह भारत में बनती नहीं। एक स्वदेशी व्रत-धारी उन सैकड़ों चीजों के बिना भी काम चला ले सकता है जिन्हें आज वह जरूरी समझ रहा है। जो लोग स्वदेशी को असंभव कह कर टाल देते हैं वे भूल जाते हैं कि यह तो एक आदर्श है जो लगातार प्रयत्न के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। यदि हम इतना ही करलें कि कुछ चीजों को स्वदेशी व्रत के लिये चुनलें और फिलहाल इस देश में नहीं पैदा होने वाली चीजों के लिये विदेशी चीजों से काम चलायें तो भी हम आपके ध्येय प्राप्ति में सहायक ही होंगे।

अब एक और विरोधी तर्क पर विचार करना रह जाता है जो स्वदेशी के विरुद्ध में उठाया जाता है। उनका कहना है कि यह एक अत्यन्त स्वार्थपरक सिद्धांत है और कोई भी नैतिक माप दण्ड के अनुसार अनुमोदनीय नहीं। उनके अनुसार स्वदेशी व्रत लेना क्या है, असभ्यता के गड्ढे में गिरना है। मैं विस्तारपूर्वक इस बात के विश्लेषण में नहीं जा सकता। पर इतना अवश्य कहूँगा कि स्वदेशी ही एक ऐसा व्रत है जो नम्रता और प्रेम के नियमों से मेल खा सकती है। सारे भारत की सेवा करने की बात सोचना हिमाकत है यदि हम अपने परिवार की सेवा करने में असमर्थ हैं। इससे अच्छा होगा कि हम अपने सारे प्रयत्न परिवार की सेवा में ही लगायें यह सोचकर कि इसके द्वारा हम सारे राष्ट्र एवं मानव जाति की सेवा कर रहे हैं। यही सच्ची नम्रता और प्रेम है। प्रेरक कार्य से ही किसी कार्य का मूल्य आंका जाता है। यह भी हो सकता है कि हम अपने परिवार की सेवा करें और हम दूसरों के कष्टों का ख्याल तक नहीं करें। मसलन हम ऐसा पेशा अख्तियार कर सकते हैं जिसके द्वारा दूसरों के धन को चूंस सकें। इस तरह हम धनिक

होकर अपने परिवार की बहुत सी अनुचित जरूरतों को पूरा कर सकते हैं। यह न तो परिवार की सेवा है और न राज्य की। यदि हम इतना सोच लें कि भगवान ने मुझे हाथ पैर दिये हैं ताकि हम अपना तथा अपने आश्रित लोगों का भरण पोषण कर सकें तब हम तुरन्त ही जीवन में सादगी लायेंगे और जिनके पास मेरी पहुँच है उनके जीवन को सादा बनाने की कोशिश करेंगे। ऐसी सूरत में हम बिना किसी दूसरे को कष्ट पहुँचाये अपने परिवार की सेवा कर सकेंगे। कल्पना कीजिये कि हम सब अपना रहन सहन इसी सिद्धान्त के अनुरूप बना लेते हैं तो एक आदर्श राज्य की स्थापना में देर न होगी। जो इसकी सत्यता में विश्वास करते हैं वे इस पर अमल करें तो वह सुन्दर दिवस जल्द से जल्द आ सकता है। इस नियम के अनुसार बाहरी तौर पर यह भले ही दीखे हम अन्य देशों को बाद देकर ही भारत की सेवा करते हैं पर इसमें दूसरे देशों को हानि नहीं पहुँचती। मेरी देश-भक्ति दोनों प्रकार की है एक तरफ यह ता विलग करती है दूसरी तरफ समेटती भी है। विलग यों करती है कि हम सारे ध्यान को अपनी जन्म-भूमि पर ही केन्द्रित करते हैं परंतु इस अर्थ में समेटती भी है कि हमारी सेवा में कोई प्रतिद्वन्द्विता अथवा शत्रुता की भावना नहीं है।

यह कोई कानून या उपदेश नहीं पर जीवन का एक भव्य सिद्धान्त है। अहिंसा और प्रेम के उचित व्यवहार की यह कुंजी है।

चर्खे का संगीत

मेरा विश्वास है कि हाथ की कताई और बुनाई से भारत के आर्थिक और नैतिक पुनरुत्थान में अत्यधिक सहायता मिलेगी। भारत के लाखों लोगों के लिये खेती के साथ ही एक सीधे व्यवसाय की आवश्यकता है। पहले कताई गृह-उद्योग के रूप में मौजूद थी और यदि लाखों को भूखों मरने से बचाना है तो उनके घरों में चर्खे का फिर से प्रचार करना ही होगा और प्रत्येक ग्राम में उसका अपना बुनने वाला रहना ही चाहिये।

जब कभी मैं चर्खे पर सूत कातता हूँ मुझे भारत के गरीबों का ख्याल हो जाता है। मध्य-वर्ग या धनिक वर्ग के लोगों से भी अधिक गरीबों का विश्वास भगवान पर से उठ गया है। भूख की आग से जलने वाले और एक मात्र अपने पेट भरने की चिन्ता वाले व्यक्ति के लिये उसका पेट ही उसका भगवान है। उन्हें जो ही रोटी दे सके वही उनका स्वामी है। उन्हीं के द्वारा वह भगवान को भी देख सकेगा। शरीर से हट्टे कट्टे व्यक्ति को भीख देना अपने को और उन्हें भी पतित करना है। उनको एक पेशे की जरूरत है और चर्खा ही एक ऐसा पेशा है जो लाखों के लिये काम का हो सकता है। मैंने चर्खे को तपस्या अथवा भगवत-प्रेम कहा है। चूँकि मेरा विश्वास है जहां गरीबों के लिये शुद्ध और क्रियात्मक प्रेमभाव है वहीं भगवान का निवास है, मैं अपने द्वारा काते प्रत्येक सूत में भगवान का दर्शन पाता हूँ।

हमारे मील हमारी जरूरतों को पूरा करने के लिये पर्याप्त सूत नहीं दे सकते और यदि दे भी सकें, दाम में कमी नहीं कर सकते यदि उन्हें बाध्य नहीं किया जाय। उन्हें तो रुपया पैदा करने की फिक्र है, अतः वे राष्ट्र की जरूरत के अनुसार दाम का नियन्त्रण नहीं कर सकते। अतः चर्खे ही एक ऐसी चीज हैं जो भारत के ग्रामों के गरीबों के हाथों में लाखों रुपये दे सकता है। प्रत्येक कृषिप्रधान देश के लिये एक ऐसे सहायक उद्योग की आवश्यकता होती है जिसमें लोग अपने बचे समय लगा सकें। चर्खा सदा से भारत का ऐसा ही उद्योग रहता आया है।

मेरे भगवान के विविध रूप हैं। कभी मैं उसे चर्खे में देखता हूँ, कभी साम्प्रदायिक एकता में, कभी अस्पृश्यता के निवारण में। इसी तरह अपने भाव के मुताबिक उनसे अपना सम्बंध स्थापित करता हूँ।

कताई कर्त्तव्य है।और धर्म है। भारत मरण-प्रायः है। वह मृत्यु शैया पर पड़ा है। क्या आपने कभी मरणोन्मुख व्यक्ति को देखा है? क्या उसके पैरों का स्पर्श किया है? आप उसके पैरों को ठंडा पाते हैं और उसके माथे पर कुछ गर्मी सी पाकर समझते हैं कि अभी जीवन गया नहीं है। परन्तु यह धीरे धीरे जा रहा है। उसी तरह भारत मां के पैर ठंडे पड़ गये हैं यदि आप उसे बचाना चाहते हैं तो जो मैं कह रहा हूँ उसे थोड़ा कीजिये। मैं सावधान किये देता हूँ कि समय रहते चर्खा सम्हालिये या नष्ट हो जाइये।

जब मैं अपने खेत में परिश्रम करने वाले किसान का ख्याल करता हूँ तो मुझे कष्ट होता है। मैं उन दिनों के लिए तरस रहा हूँ जब की देश का शासनवर्ग राजनीति में भाग लेने वाला वर्ग गरीब किसानों की जिन्दगी को देख कर अपने रहन सहन का

ढंग बदलेगा और उस खाई को दूर करेगा जो उसको गरीबों से पृथक कर रही है। मैं राजा के महल से तथा सेठों की अट्टालिका से डाह नहीं करता पर उनसे मेरी हार्दिक प्रार्थना यह अवश्य है कि वे उस खाई को दूर करने के लिए अवश्य कुछ करें जो उनके और किसानों के बीच आ पड़ा है। उन्हें चाहिये कि एक ऐसे सेत का निर्माण करें की जिसके द्वारा वे किसानों तक पहुँच सकें। उनका जीवन चारों तरफ बसे गरीबों के जीवन से कुछ २ अनुरूप अवश्य होना चाहिये। मैं आप ी अन्तः प्रेरणा के अनुसार एक ऐसे पुल को बना रहा हूँ। और मेरी यह विनम्र प्रार्थना है कि वैसा पुल सोने की खानों से नहीं बनाया जा सकता। मुझे खूब मालूम है कि हमें उ ा सोने और लोहे की खानों की आवश्यकता है। मेरी यह मन्शा नहीं कि किसी चीज को विनष्ट किया जाय। मैं केवल च ाहता हूँ पुनर्निमाण, थोड़ा सुधार और थोड़ी उन्नति। अतः मेरा कहना है कि रुई का कच्चा सूत ही हमें गरीबों के साथ पवित्र बंधन में बांध सकता है। देश के रुई के सूत के भंडार में आप कितनी वृद्धि कर सकेंगे वही इस बात की जांच होगी कि आप राज-महलों और झोंपड़ियों के अंतर को कहां तक दूर कर सकते हैं। कताई किसी मौजूदे उद्योग के साथ छोड़कर उसे हटाने के लिये नहीं है। यह इस लिये नहीं है कि वह दूसरे पेशे से जीविका पैदा करने वाले एक भी हट्टे कट्टे आदमी को वहां से हटावे। खेती के साथ २ एक दूसरे अनुकूल पेशे का अभाव भारत के विशाल जनसमूह को वर्ष के छः महिनों में जबरन निठल्ले बैठे रहना पड़ता है और परिणाम होता है भूखमरी। भारत के सामने खड़ी इसी महान समस्या का यहएक शीघ्रतम, अचूक और व्यवहारिक हल है। और यही इसकी सार्थकता की सबसे बड़ी दलील है।

मेरा दावा है कि चर्खे से देश की आर्थिक दुर्गति की समस्या बहुत ही सीधे, बिना अधिक खर्च के, और व्यवहारिक रूप में हल हो सकती है। अतः चर्खा को बेकार तो कहा ही नहीं जा सकता········प्रत्युत प्रत्येक गृह के लिए यह एक उपयोगी और अनिवार्य चीज है। यह राष्ट्र की उन्नति और फलतः स्वतंत्रता का प्रतीक है। यह व्यवसायिक युद्ध नहीं परन्तु व्यवसायिक सुलह का प्रतीक है। इसमें संसार के राष्ट्रों के लिये आपस में दुर्भावना नहीं परंतु सद्भाव और आत्मनिर्भता का संदेश है। संसार की शांति के खतरे के रूप में खड़ी नौ सेना की रक्षा की इसकी आवश्यकता नहीं परंतु इसको आवश्यकता है लाखों में अपने ही घरों में सूत कातने की धार्मिक दृढता की जिस तरह घरों में भोजन बनाया जाता है। हो सकता है बहुत सी भूलों के लिये आगे आने वाली पीढी हमें कोसे ही। पर मेरा दृढ विश्वास है चर्खे के पुनरुत्थान की बात को सुझाने के लिए मैं उनके आशीर्वाद का ही भाजन होऊँगा। मैं इस पर अपनी सारी बाजी लगा दूंगा क्योंकि चर्खे के प्रत्येक चक्कर से शांति, सद्भावना और प्रेम की वर्षा होती है। यह भी बात ठीक है कि जैसे इसके नाश के साथ भारत की स्वतंत्रता का नाश हुआ वैसे ही इसके उत्थान का अर्थ भारत की स्वतंत्रता का उत्थान होगा।

हिन्दू मुसलिम एकता

म अपने देशवासियों से प्रार्थना करता हूँ कि वे अहिंसा को चरम आदर्श के रूप में अंगीकार करें......विभिन्न सम्प्रदायों में सद्भाव उत्पन्न करने और स्वराज्य की रक्षा के लिए। हिंदुओं, मुसलमानों, सिखों और पारसियों को अपने झगड़ों को निपटाने के लिये हिंसा का आश्रय नहीं लेना चाहिये और स्वराज्य प्राप्ति के साधन भी अहिंसात्मक हों। इसे मैं गरीबों के अस्त्र के रूप में नहीं पर शक्तिमानों के रूप में ही भारत के सामने रखने का साहस कर रहा हूँ। हिंदू और मुसलमान दोनों धर्म में जबरदस्ती नहीं होने देने की बहुत बातें करते हैं। पर यह जबरदस्ती नहीं तो और क्या है कि एक गाय की रक्षा के लिये एक हिन्दू एक मुसलमान की हत्या करे? यह ठीक वैसा ही है जैसा कि जबरदस्ती एक मुसलमान को हिन्दू बनाने का प्रयत्न करना ठीक वैसी ही यह भी जबरदस्ती ही है कि मुसलमान मस्जिद सामने बाजा बजाने जोर से रोकना चाहें। धर्म तो यह है कि तमाम शोर गुल के बीच में हम प्रार्थना में तन्मय हो जांय। यदि हम अपने धर्म का आदर कराने के लिये दूसरों को जबरदस्ती बाध्य करें तो आगे आने वाली पीढी हमें अधार्मिक और असभ्य कहेगी।

मुझे अटल विश्वास है यदि हम उपर्युक्त दोनों समस्याओं के समाधान के लिए अहिंसा पर पुनः विश्वास ला सकें. यदि वह कभी रहा हो, तो इन दोनों सम्प्रदायों के बीच उत्पन्न

तनाव बहुत हद तक दूर होजाएगा। मेरी राय है कि आपस के तनाव को दूर करने के प्रश्न पर विचार करने के पहले यह बात अनिवार्य शर्त के रूप में मान ली जानी चाहिये कि आपसी व्यवहार के लिये अहिंसा का आश्रय लिया जाय। इन दोनों जातियों में यह सामान्य बात होनी चाहिये कि कोई भी कानून को अपने हाथों में नहीं लेगा; सारे झगड़े जब कभी और जहां कहीं भी हों, या तो किसी मध्यस्त के द्वारा या, इच्छा हो तो, कानून के इजलासों द्वारा निपटाये जायेंगे। जहां तक साम्प्रदायिक मामलों का संबंध है अहिंसा का यही अर्थ है। दूसरे शब्दों में जैसे हम दीवानी मामलों में एक दूसरे का सर नहीं फोड़ते वैसे ही धार्मिक मामलों में व्यवहार करना चाहिये। दोनों दलों में केवल इसी एक संधि की आवश्यकता है। दूसरी बातें आप ही आप तय पा जायेंगी। जब तक यह पहली शर्त नहीं मान ली जाती तबतक हमारे पास वैसा वातावरण नहीं रहेगा कि हम आपस की गलत फहमी को दूर करने और एक कायम रहने वाले सुलहनामे के साधन की बात सोची जा सके।

मेरी अहिंसा का अर्थ खतरे से भागना और अपने साथियों को अरक्षित अवस्था में छोड़ देना नहीं है। हिंसा और कायरता से भाग खड़े होने में यदि चुनना हो तो मैं हिंसा को ही पसंद करूंगा। एक कायर को अहिंसा का उपदेश देना अंधे को सुन्दर दृश्यों के आनन्दोपभोग करने को कहने से कुछ अधिक अच्छा न होगा। अहिंसा वीरता की पराकाष्ठा है और मेरा यह अपना अनुभव है कि हिंसा के पाठ में दीक्षित मनुष्यों को अहिंसा की श्रेष्ठता दिखलाने में कुछ अधिक कठिनाई मुझे नहीं हुई है। वर्षों तक जब मैं कायर था मुझ में हिंसा की भावना थी। जब से मैंने कायरता को अपने जीवन से पृथक करना शुरु किया तभी से मैं अहिंसा को महत्व देने लगा। खतरे से

पूर्ण कर्त्तव्य को छोड़ कर जो हिन्दू भाग गये थे वे इस कारण भागे थे कि वे मरना अथवा जोखिम उठाना नहीं चाहते थे। इसलिये नहीं कि वे अहिंसा में विश्वास करते थे या मारने में भय खाते थे। कुत्ते को देखकर जो खरगोश भाग जाता है यह कोई जरूरी नहीं कि वह अहिंसक हो। वह बेचारा तो कुत्ते की सूरत देखकर ही भय से कांप जाता है और जान लेकर भागता है।

परन्तु अखाड़ों के द्वारा यह बात नहीं होने की। ऐसा नहीं कि मैं अखाड़ों को बुरा मानता हूँ। नहीं मैं उन्हें शारीरिक सुधार के लिये आवश्यक समझता हूँ। वे सबके लिये होने चाहिये। परन्तु यदि हिन्दू-मुसलिम संघर्ष के समय रक्षा की तैयारी के लिये खोले गये हैं तो उनकी असफलता अनिवार्य है। मुसलमान लोग भी वही करेंगे और ऐसे प्रयत्नों से चाहे वे गुप्त रूप में हों या प्रकट, आपस के संदेह और भेद भाव में वृद्धि ही होगी। उनसे मौजूदा रोग की दवा नहीं हो सकती। यह शिक्षित मनुष्य का कर्त्तव्य है कि मध्यस्थता के द्वारा समझौते की बात को अधिक लोकप्रिय तथा अनिवार्य बनायें।

मेरी हिन्दू सहज प्रवृत्ति कहती है कि सब धर्मों में, सच्चाई है। सबका श्रोत ईश्वर ही है पर सब में अपूर्णता है क्योंकि वे मनुष्य के माध्यम से होकर आये हैं। अपने अपने धर्मों में पूर्णता प्राप्त करने की चेष्टा ही वास्तविक शुद्धि आन्दोलन है। ऐसी योजना की कसौटी एक मात्र चरित्र निर्माण ही होना चाहिये। यदि हमारा नैतिक उत्थान नहीं होता तो एक कमरे को छोड़कर दूसरे कमरे में जाने का अर्थ ही क्या है? ईश्वर की सेवा में लोगों को परिवर्तित करने का अर्थ ही क्या है (क्योंकि शुद्धि का यही अर्थ हो सकता है) जबकि हमारे दल के व्यक्ति अपने व्यवहारों के द्वारा ईश्वर को अस्वीकार

कर रहे हैं। "वैद्य! पहले अपनी तो दवा कर" यह सिद्धान्त सांसारिक क्षेत्र की अपेक्षा धार्मिक क्षेत्र में अधिक लागू है।

यदि कोई आर्य समाजी या मुसलमान धर्मोपदेशक आदमी अन्तःप्रेरणा के कारण अपने सिद्धान्तों का प्रचार करे और बस इतने मे ही हिन्दू-मुसलिम एकता खतरे में पड़ जाय तो वह एकता केवल बाहरी है। हम इन आन्दोलनों से क्यों घबरायें? यदि विधर्मी हिन्दू धर्म में आना चाहते थे तो जब चाहे इसकी उन्हें पूरी स्वतंत्रता और हक है। पर दूसरों की निन्दा करने वाले प्रचार को छूट नहीं दी जा सकती है। क्योंकि वह असहिष्णुता होगी। ऐसे प्रचारों के नाश करने का सर्वोत्तम तरीका है कि जनता उसका तिरस्कार करें। प्रत्येक आन्दोलन आदरणीयता का जामा पहन कर चलने का प्रयत्न करता है। ज्योंही जनता ने उस जामे को फाड़ डाला कि वह आदरणीयता के अभाव में नष्ट हो जायगा।

अब उन दो समस्याओं पर विचार करें जो आपस के झगड़े के निरंतर कारण बने हुए हैं। पहले समस्या गोवध की है। यद्यपि गोरक्षा को हिन्दू धर्म की प्रधान बात समझता हूँ। प्रधान इसलिये कि यह जनता के लिये भी है और विशिष्ट दल के लिये भी तथापि इसको लेकर मुसलमानों की ओर बैर भाव रखने की बात मेरी समझ में नहीं आई। अंग्रेजो के द्वारा जो प्रति दिन गोवध हो रहा उसके बारे में हम चूं तक नहीं करते। पर हमारी क्रोधाग्नि भड़क पड़ती है यदि एक मुसलमान गौवध करता है। गाय के नाम पर जो दंगे हुए हैं वे सब पागल के व्यर्थ प्रयत्न भर ही हैं। उनसे एक गाय की भी रक्षा नहीं हो सकती है बल्कि उनसे मुसलमानों में एक जिद बढ गई है जिसका परिणाम अधिक गोवध हुआ है।......गो रक्षा को

पहले अपने से आरम्भ करना चाहिये। पशुओं के साथ दुर्व्यवहार जितना भारतवर्ष में किया जाता है उतना संसार के किसी भी भाग में नहीं। हिन्दू गाड़ीवानों को अपने बूढ़े बैलों को डंडों की कीलों से ठेलते देखकर मुझे कई बार रुलाई आ गई है। पशुओं का अध-भूखी अवस्था हमारे लिये शर्म की बात है। गायों की गरदनें कसाई की छुरी के तले इसलिये आती हैं कि हिन्दू उनको बेचता है। इसके लिये सबसे पुर-असर और सम्मान-पूर्ण उपाय यही है कि हम मुसलमानों से मैत्री भाव का स्थापन करें और गोरक्षा की बात उनकी ईमानदारी पर छोड़दें। गोरक्षा संस्थाओं को चाहिए कि वे इन बातों पर ध्यान दें। (१) उन्हें अच्छा खाने को मिले (२) उनके प्रति क्रूरता न की जाय। (३) दिन दिन नष्ट होने वाले चरागाहों की रक्षा हो। (४) उनकी नस्ल अच्छी हो। (५) गरीब गडरियों से खरीद कर जितने पिंजरापोल हैं उन्हें आदर्श डेरी के रूप में परिणत किया जाय। यदि ऊपर लिखी बातों में से कोई बात एक हिंदू नहीं करता है तो वह ईश्वर और मनुष्य दोनों के प्रति अपराधी है। यदि वे मुसलमानों के द्वारा जो गोवध होता है उसे रोकने में असमर्थ हैं तो कोई पाप नहीं करते परन्तु यदि वे गाय की रक्षा के लिये मुसलमानों से लड़ते हैं तो वे अवश्य गुरुतर अपराध के भाजन होते हैं।

मस्जिद के सामने बाजा, और अब तो हिन्दू मन्दिरों में आरती के प्रश्न की ओर हमारा ध्यान गया है। मुसलमानों के लिये यह वैसा ही नाजुक स्थल है जैसा हिन्दुओं के लिये गोवध। जिस तरह हिन्दू मुसलमानों को गोहत्या रोकने के लिये बाध्य नहीं कर सकता वैसे ही मुसलमान बाजा या मन्दिर में आरती तलवार के जोर पर बन्द नहीं करा सकते। उन्हें हिन्दुओं के सद्भाव पर विश्वास करना ही होगा। एक हिन्दू के नाते मैं

प्रत्येक हिन्दू को सलाह दूंगा कि वह बिना किसी लाभ की आशा के अपने मुसलमान पड़ोसी भाई के भावों को समझने की कोशिश करे और देखे कि उन्हें कहां तक निबाह सकता है। मैंने सुना है कि कुछ स्थानों पर हिन्दू लोग जान बूझकर मुसलमानों को चिढाने के लिये आरती आरम्भ करते हैं जब उनका नमाज शुरू होता है। यह पागलपन है और शत्रुता है। मित्रता का अर्थ ही यह है मित्र के भावों का अधिक से अधिक ख्याल रखा जाय। हममें कुछ सोच विचार करने की बात नहीं। परन्तु मुसलमानों को हिन्दूओं से जबरदस्ती बाजा बन्द करने की आशा नहीं करनी चाहिये। किसी भय या हिंसात्मक कार्य के सामने झुक जाना अपने आत्म सम्मान और विश्वास में बट्टा लगाना है। परन्तु भय के सामने अडिग रहने वाला वैसे अवसरों को बहुत कम करके देखेगा जिनसे बैरभाव बढता है और उन्हें जहां तक हो सकेगा दूर करेगा।

मेरा विश्वास है कि यदि नेता गण नहीं चाहें तो जनता लड़ना नहीं चाहती। अतः यदि नेता गण यह तय करलें कि आपस का झगड़ा किसी भी उन्नत देश के लिये अमानुषिक और अधार्मिक है और उसे दूर कर देना चाहिये तो निःसन्देह जनता उनका अनुकरण करेगी।

यदि हिन्दू चाहते हैं कि भिन्न भिन्न सम्प्रदायों में एकता कायम रहे तो उनमें इतना साहस होना चाहिये कि वे अल्पमत वाले साम्प्रदाय में विश्वास करें। किसी दूसरे तरीके से कड़वाहट नहीं जायेगी। यह सत्य है कि लाखों आदमी व्यवस्थापिका सभा और म्यूनिसिपेलेटी के सदस्य नहीं होना चाहते। यदि हमने सत्याग्रह का ठीक अर्थ समझा है तो यह स्पष्ट होगा कि सत्याग्रह किसी अन्यायी शासक के विरुद्ध काम में लाया जा सकता है और लाया जाना चाहिए भी चाहे वह हिन्दु,

मुसलमान और किसी जाति का हो। साथ ही साथ न्यायी शासक का सदा समर्थन होना चाहिये चाहे वह हिन्दु, मुसलमान अथवा किसी जाति का हो। हम चाहते हैं साम्प्रदायिक भेद-भाव दूर हो। अतः यह आवश्यक है कि आरम्भ बहुमत सम्प्रदाय से हो और वे अल्पमत के हृदय में विश्वास उत्पन्न करें। यह व्यवस्था तभी सम्भव है जब कि अधिक शक्तिशाली दल की ओर से पहला कदम उठे इस बात को बिना सोचे ही कि निर्बल दल की ओर से कैसी प्रतिक्रिया होती है।

जहां तक सरकारी महकमों के संबंध में सोचता हूँ यहां पर साम्प्रदायिक भावों को स्थान देना किसी सुशासन के लिये भयानक है। शासन तभी सुशासन हो सकता है जब वह योग्यतम व्यक्ति के हाथों में होगा। वहां पक्षपात का कोई स्थान नहीं। यदि हमें पांच इन्जिनियर की जरुरत है तो यह कोई आवश्यक नहीं कि एक एक जाति से एक एक आदमी लिये जाँय परन्तु हमें चाहिये कि हम पांच योग्यतम व्यक्ति को चुने चाहें वे कुल के कुल मुसलमान पारसी ही क्यों न हो। छोटी नौकरियों के लिये, यदि जरूरत हो तो एक परीक्षा कायम करदी जाय जिसका संचालन एक बोर्ड के द्वारा हो जो पक्षपात हीन हो और जिसमें भिन्न भिन्न सम्प्रदाय के व्यक्ति रहें। पर नौकरियों का वितरण कभी भी सम्प्रदाय की जन संख्या के अनुपात से न हो। जो जाति शिक्षा की दृष्टि से पिछड़ी है उसे राष्ट्रीय सरकार के द्वारा शिक्षा में कुछ सुविधा प्राप्त करने का हक होगा। परन्तु जो देश के सरकार की जिम्मेदारी वाली पूर्ण नौकरी प्राप्त करना चाहते हैं वे उसके लिये निश्चित परीक्षा पास करके ही प्राप्त कर सकते हैं।

मेरे लिये तो सबसे तात्कालिक प्रश्न हिंद मुसलिम एकता का प्रश्न है। मैं जिन्ना महोदय के मत से सहमत हूँ कि हिंद मुस्लिम

एकता का अर्थ स्वराज्य है। इस दुर्दैव के मारे भारत में मैं हिंदू मुस्लिम की हार्दिक और कायम रहने वाली एकता के बिना कुछ भी संभव मुझे नहीं दीखता। मेरा विश्वास है कि यह शीघ्र ही संभव हो सकता है क्यों कि यह इतना आवश्यक है और मैं मानव स्वभाव में विश्वास करता हूँ। हो सकता है मुसलमान दोषी हो। मैं ऐसे लोगों से जिन्हें 'बदमाश' कहा जा सकता है घनिष्ट सम्पर्क में आया हूँ। मुझे एक भी अवसर नहीं मिला जिसका मुझे पछतावा हो। मुसलमान वीर, उदार और विश्वासनीय होते हैं केवल उनका संदेह दूर हो जाना चाहिये। हिंदुओं को काँच के मकान में अपने मुसलमान पड़ोसी पर पत्थर फैंकने का हक नहीं है। हम लोग जरा विचारें तो सही कि दलित जातियों के साथ क्या किया है और करते जा रहे हैं।

ईश्वर सीधे साधे रूप में दण्ड नहीं देता। उसकी गति रहस्यमयी है। कौन जानता है कि हमारी सारी दुर्गति उसी एक भयानक पाप के कारण हुई। यदि मुसलमान कभी नैतिक ऊंचाई से नीचे गिरते दिखाई पड़ते हैं तो उनके इतिहास में बहुत से चमकते पृष्ठ भी हैं। अपने गौरव के दिनों में इस्लाम असहिष्णु नहीं था। वह संसार यशोभाजन बन सका था। सारा पश्चिम जब अन्धकार में गर्क था उस समय पूर्वी क्षितिज पर एक चमकता सितारा उगा और उसने पीड़ित जग को रोशनी और शान्ति दी। इस्लाम झूठा धर्म नहीं। यदि हिंदू श्रद्धा पूर्वक इसका अध्ययन करें तो इसे वे वैसा ही प्यार करें जैसा मैं करता हूँ। यदि यहां आकर वह कुछ रूखड़ा और खूँखार हो गया तो इसे इस रूप में बनाने में हमारा कुछ कम हिस्सा नहीं है ऐसा हम मानें। यदि हिंदू अपना घर दुरस्त करें तो इसमें मुझे जरा भी संदेह नहीं कि इस्लाम अपने उदार और प्राचीन परम्परा के अनुरूप ही आचरण करेगा। परि-

स्थिति की कुंजी हिंदुओं के हाथ में है। हमें कायरता दूर कर देनी चाहिये। हमें वीरता पूर्वक विश्वास करना चाहिये, सारी बातें ठीक हो जायेंगी।

जब अंग्रेज चले जायेंगे तो दोनों हिन्दू और मुसलमान यह महसूस करेंगे कि मिलकर ही रहने में कल्याण है जैसा वे अंग्रेजों के आगमन के पूर्व रहते थे। यदि बराबर लड़ाई होती रहती तो दोनों में से एक का तो नामोनिशान मिट गया होता। यदि भारत में सच्ची स्वतंत्रता आती है तो वहां कांग्रेस और मुस्लिम लीग का कोई स्थान नहीं। ब्रिटिश की बन्दूकों के कारण एक ऐसी कृत्रिम परिस्थिति होगई कि स्वाभाविक मानव व्यापारों का मार्ग दब गया है और दबाने वाले और दबाये जाने वाले दोनों के नैतिक बल का ह्रास हो गया है।

नारी जाति का कल्याण

नारियों की उचित शिक्षा में मेरा विश्वास है। पर साथ ही मेरा यह भी विश्वास है कि नारियां पुरुषों का अनुकरण मात्र करके अथवा उनके साथ होड़ करके संसार का भला नहीं कर सकतीं। नारियां चाहें तो होड़ कर सकती हैं पर पुरुषों का अनुकरण करके अपनी वास्तविक महानता को नहीं पहुँच सकतीं। उन्हें पुरुषों का पूरक होना है।

कानून तो बहुत अंशों में पुरुष की कृति है, और इस स्वनियोजित कार्य में पुरुषों ने सदा न्याय और विवेक बुद्धि से ही काम नहीं लिया है। हमारे शास्त्रों ने कुछ दुर्गुणों को नारी जाति की खास विशेषता के रूप में बतलाया है। नारी जाति के उद्धार के लिये इन्हें दूर करने की ओर ही हमारा सर्वाधिक ध्यान जाना चाहिये। पर कौन इसके लिये प्रयत्न करे और किस तरह मेरी विनम्र राय में ऐसा प्रयत्न करने के लिये हमें सीता, दमयन्ती और द्रौपदी की तरह शुद्ध दृढ़ और संयमी नारियों को पैदा कर सकें तो इन आधुनिक बहनों का वही गौरव होगा जो शास्त्रों का है। स्मृति ग्रन्थों में उन पर जो यदा कदा छींटाकशी की गई है उस पर हम लज्जित न होंगे और उन्हें शीघ्र भूल जायेंगे। अतीत में हिंदू जाति में ऐसी क्रांतियां हुई हैं, वे भविष्य में भी हो सकती हैं और इससे हम में दृढता ही आयेगी।

हम लोगों ने उन आदर्शों पर खूब सोचा है जिनके प्राप्त

करने से हमारी नारियों की वर्त्तमान परिस्थिति में सुधार हो सकता है। इन आदर्शों को प्राप्त करने वाली नारियों की संख्या तो अवश्य थोड़ी ही होगी। अतः हमें यह सोचना है कि प्रयत्न करने पर साधारणतः नारी क्या कर सकती है? पहला कदम यह होना चाहिये कि हम जहां तक हो सके अधिक से अधिक नारियों में उन्हें अपनी अधोगति का ज्ञान पैदा कर दें। मैं उन लोगों में नहीं हूँ जो इसमें विश्वास करते हैं कि यह काम लिखने पढने की शिक्षा से ही हो सकता है। उस आधार पर काम करना अपने उद्धेश्य की प्राप्ति को एक निश्चित काल के लिये टालना होगा। मुझे पद पद पर यह अनुभव हुआ है कि इतनी देर तक इन्तजार करने की आवश्यकता नहीं। बिना शिक्षा दिये ही हम उन्हें वर्त्तमान अधोगति का ज्ञान प्राप्त करा सकते हैं।

नारी पुरुष की सहयोगिनी है और उसे भी बराबर ही मानसिक शक्तियां मिली हैं। पुरुषों के काय कलापों की छोटी छोटी बात में भी भाग लेने का उसे पूरा अधिकार है और वह पुरुष की तरह ही स्वतंत्र है। नारी को अपने कार्य-क्षेत्र में वही महत्ता प्राप्त है जैसे पुरुषको। यह स्वाभाविक रूप में होना चाहिये और पढने लिखने के फलस्वरूप नहीं। केवल एक बुरी प्रथा के बल पर ही एक मूर्ख से मूर्ख पुरुष भी नारियों पर प्रभुत्व का अधिकारी रहा है जिसकी योग्यता उसमें कुछ भी नहीं, और जैसा उसे करना चाहिये भी नहीं। हमारे बहुत से आन्दोलन चल कर बीच ही में रुक जाते हैं स्त्रियों की इस गति के कारण। हमारे बहुत से कार्यों का उचित फल नहीं मिलता। हमारी दशा उस हीरा को देखने वाले पर कोयला पर छाप देने वाले व्यापारी की है जो अपने व्यापार में काफी पूंजी नहीं लगाता।

मेरा विश्वास तो है कि बिना पढे लिखे भी बहुत सा अच्छा और उपयोगी काम हो सकता है परन्तु मेरा यह साथ

में दृढ विश्वास भी है कि उसके अभाव में सदा काम नहीं निकल सकता। इससे हमारी प्रतिभा विकसित हो तो, उस पर शान चढती है और अच्छे काम करने की शक्ति बढती है। मैंने पढने लिखने को जरूरत से ज्यादा कभी भी महत्व नहीं दिया है। मैं उसका यथोचित स्थान देना चहाता हूँ। मैंने समय समय पर कहा है कि केवल अशिक्षा के कारण ही नारियों को पुरुषों के समानाधिककार से वंचित रखना न्याय नहीं। पर नारियों में शिक्षा की जरूरत है कि वे इन अधिकारों की रक्षा कर सकें, उनको उन्नत कर सकें, उनका प्रचार कर सकें। यह भी बात ठीक है कि आत्मा-संबंधी ज्ञान उन लोगों के लिये संभव नहीं जो लिखना पढना नहीं जानते। पुस्तकों में बहुत सी विशुद्ध आनन्द की बातें भरी पड़ी हैं और शिक्षा के अभाव में मनुष्य एक पशु से बहुत कुछ अच्छा नहीं। अतः शिक्षा स्त्रियों के लिये उतनी ही आवश्यक है जितनी पुरुषों के लिये। यह बात नहीं कि दोनों की शिक्षा प्रणाली एक ही हो। पहली बात तो यह है कि हमारी शिक्षा प्रणाली दूषित है और कई अंशों में हानिकर है। इनका तो परित्याग पुरुष और नारी दोनों को करना चाहिये। यदि वर्त्तमान दोषों को दूर कर भी दिया जाय तो भी उसे प्रत्येक दृष्टि से मैं नारी-उपयोगी शिक्षा प्रणाली नहीं कहूँगा। नारी और पुरुष दोनों के समान अधिकार हैं पर वे एक ही नहीं है। उनकी एक अति ही भव्य जोड़ी है। वे एक दूसरे के पूरक और सहायक हैं। एक के बिना दूसरे के अस्तित्व की कल्पना तक नहीं हो सकती। अतः यह अनिवार्य निष्कर्ष निकलता है कि वह चीज जो दोनों में से किसी की प्रतिष्ठा को कम करेगी उससे दोनों का नाश होगा। नारियों के लिये किसी नई शिक्षा प्रणाली की योजना बनाते समय इस प्रधान सत्य को नहीं भूलना होगा। विवाहित दम्पतियों में पुरुषों को बाहर के

कार्यों में प्रधान भाग लेना पड़ता है अतः यह उचित है कि इन्हें इन बातों का ज्ञान अधिक हो। दूसरी ओर गृह जीवन नारियों का कार्य क्षेत्र है। अतः घरेलू कामों का, लड़कों का पालन तथा शिक्षा विधि का उसे अधिक ज्ञान होना चाहिये। यह नहीं कि ज्ञान के टुकड़े टुकड़े कर दिया जाय अथवा ज्ञान की कोई शाखा किसी के लिये बंद कर दी जाय परंतु यह ठीक है कि यदि शिक्षा प्रणाली की बुनियाद इस मौलिक सिद्धांत के आधार पर नहीं रखी गई तो नारी और पुरुषों के जीवन का पूरा पूरा विकास नहीं हो सकेगा।

मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि साधारणतः जीवन व्यतीत करने के लिये हमारी नारियों और पुरुषों के लिये अंग्रेजी का जानना कोई आवश्यक नहीं। हां, जीविकोपार्जन के लिये एवं राजनीतिक आंदोलनों में सक्रिय भाग लेनेके लिये अंग्रेजी आवश्यक है। मेरा इस बात मे विश्वास नहीं कि नारी जीविका उपार्जन करे अथवा-व्यावसायिक कार्यों में भाग ले। वे थोड़ी सी नारियां जिन्हें अंग्रेजी की शिक्षा की जरूरत है और जिन्हें उसकी चाहना है वे पुरुषों के स्कूलों में उसे प्राप्त कर सकतीं हैं। नारियों के स्कूलों में अंग्रेजी के प्रवेश का अर्थ होगा केवल अपनी असहायता की वृद्धि। मैंने अक्सर पढ़ा है और सुना है कि अंग्रेजी साहित्य के भंडार को स्त्री और पुरुष दोनों के लिये उन्मुक्त कर देना चाहिये। मेरा नम्र निवेदन है कि इस कथन में कहीं गलत फहमी है। कोई नहीं चाहता कि ये भण्डार पुरुषों के लिये तो खुलेरहें पर नारियों के लिये बन्द।

यदि आपमें साहित्यिक अभिरुचि है तो संसार के साहित्य के अध्ययन से आपको कोई भी रोक नहीं सकता। परन्तु यदि

शिक्षा का कार्य-क्रम एक खास समाज को मद्दे नजर रखकर बनाया गया हो तो कुछ साहित्यिक अभिरुचि रखने वाले व्यक्तियों की आवश्यकतायें आप पूरी नहीं कर सकते। जब मैं भारतवासियों को अंग्रेजी के पठन पाठन में कुछ कम समय देने के लिये कह रहा हूँ तो मेरा उद्देश्य यह नहीं कि मैं उनके अध्ययन जन्य आनन्द से उन्हें वंचित करना चाहता हूँ। नहीं, मेरा विश्वास है कि यदि एक अधिक प्राकृतिक मार्ग का अवलम्बन किया जाय तो वह आनन्द कम परिश्रम और कम खर्च में प्राप्त किया जा सकता है। संसार अप्रतिभ सुन्दर रत्नों से भरा पड़ा है पर सबमें अंग्रेजी रंग ही नहीं है। हमारी भाषा को वैसी ही सुन्दर रचना को उत्पन्न करने का गर्व है। इन्हें सर्व साधारण के ज्ञान के लिये सुलभ बनाना चाहिये और यह तभी संभव है जब हमारे विद्वान हमारी भाषाओं में उन्हें अनुवाद करें।

पर ऊपर की दी गई रूपरेखा के अनुसार एक शिक्षा का कार्यक्रम तैयार कर देने मात्र से ही हमारे समाज से बाल-विवाह का अभिशाप भी दूर नहीं हो जायेगा अथवा इतने से ही स्त्रियों को समानाधिकार प्राप्त नहीं हो जायेगा। हम लोग उन लड़कियों पर विचार करें जो विवाहोपरांत एक तरह से हमारी नजरों से ओझल हो जाती हैं। उनका स्कूलों में आना मुमकिन नहीं। मातायें जानती हैं कि उनकी लड़कियों की शादी बालपन में हो जायेगी अतः वे उन्हें शिक्षा देने अथवा किसी अन्य उपाय से उनके शुष्क जीवन को सरस बनाने के उपाय सोच नहीं सकती। वह मनुष्य जो छोटी लड़कियों के साथ विवाह करता है काम-वासना के सिवा दूसरे किसी उद्देश्य से नहीं करता। इन लड़कियों का उद्धार कौन करे? इस प्रश्न के समुचित उत्तर पर ही हमारी नारियों की समस्या हल होगी।

उत्तर यद्यपि कठिन है पर वह एक ही हो सकता है। उनका उद्धार उनके पति ही कर सकते हैं दूसरे नहीं। एक बाल-पत्नी से यह आशा करना कि वह अपने पति को सुधारे, व्यर्थ है। अतः फिलहाल यह कठिन काम पुरुष पर ही छोड़ना होगा। यदि हो सका तो मैं बाल-पत्नियों की गणना करूंगा और उनके लिये उद्धारकों की तलाश करूंगा और नैतिक तथा विनम्र प्रार्थनाओं के द्वारा यह समझाने का प्रयत्न करूंगा कि छोटी बच्चियों के साथ अपने भाग्य को जोड़ कर उन्होंने कितना बड़ा पाप किया है। मैं उन्हें सतर्क करूंगा कि उनके पाप का तबतक प्रायश्चित नहीं होगा जब तक कि वे अपनी बाल-पत्नियों को योग्य नहीं बनावें। केवल बालक उत्पन्न करने योग्य नहीं परन्तु उनके लालन पालन के भी योग्य। साथ ही साथ उन्हें पूर्ण ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करना होगा।
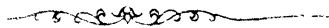
अस्पृश्यता का अभिशाप

यह वर्तमान हिन्दू धर्म के माथे पर अमिट कलंक का टीका है। मैं विश्वास नहीं करता कि यह अनन्त काल से हमारे बीच चला आ रहा है। मैं सोचता हूँ कि अस्पृश्यता के इस सत्यानाशी और बंधनकारी भावना ने हमारे बीच उस समय प्रवेश पाया होगा जब हम अपनी अधोगति की चरम सीमा पर थे। यह बुराई हमारे साथ लगी रही है और आज भी लगी है। मेरे जानते यह एक अभिशाप है और जब तक यह अभिशाप हमारे साथ लगा रहेगा तब तक हमें सोचना चाहिये कि इस पवित्र भूमि पर जो कुछ भी विपत्ति आती है वह इस घोर पाप के दण्ड स्वरूप ही है।

अस्पृश्यता जिस रूप में आज हिन्दू धर्म में प्रचलित है वह भगवान और मनुष्य दोनों के विरुद्ध पाप है। अतः यह एक विष की तरह है जो हिन्दू धर्म के मर्म को खाये जा रहा है। मेरी राय में सामूहिक दृष्टि से हिन्दू शास्त्रों में कहीं इसके लिये स्वीकृति नहीं है। निस्सन्देह स्वस्थ अस्पृश्यता हिन्दू शास्त्रों में पाई जाती है और यह सर्व धर्मों में सार्वभौमिक रूप से पाई जाती है। यह स्वास्थ्य संबंधी नियम है। यह अनंत काल तक रहेगा पर आज जिस रूप में अस्पृश्यता प्रचलित है वह भयानक चीज़ है और यह भिन्न भिन्न प्रांतों और जिलों में भिन्न भिन्न रूप धारण करती है। इसने अस्पृश्यता और स्पृश्य दोनों को नीचे गिराया है। इसने ४० लाख मनुष्यों की अभिवृद्धि को

अवरुद्ध कर दिया है। उन्हें जीवन की साधारण सुविधायें भी प्राप्त नहीं। अतः जितना ही जल्द इसका नाश हो उतना ही हिंदू धर्म के लिये, भारतवर्ष के लिये और शायद पूरी मानव जाति के लिये श्रेयस्कर है।

स्वराज्य एक निरर्थक शब्द मात्र है यदि हम भारत की आबादी के पांचवें हिस्से को सदा के लिये गुलामी के बन्धन में जकड़े रहें और राष्ट्रीय संस्कार के फलों से उन्हें वंचित रखें। हम लोग इस महान पवित्र आंदोलन में भगवान से सहायता की प्रार्थना कर रहे हैं परन्तु उसके सबसे योग्यतम जीवों को मानवता के अधिकारों से वंचित करना चाहते हैं। हम लोग स्वयं अमानुषीय हो गये हैं अतः हम लोगों को ईश्वर से दूसरों की अमानुषिकता से मुक्त होने की प्रार्थना करने का हक नहीं।

अस्पृश्यता एक पुरानी संस्था है इसे किसी ने अस्वीकार नहीं किया है। अगर यह कलंक है तो प्राचीनता के नाम मात्र पर इसका समर्थन नहीं हो सकता। यदि अछूत आर्यों के समाज के बहिष्कृत जीव हैं तो उस समाज के लिये और भी बुरा है। यदि आर्य अपनी सभ्यता की किसी अवस्था विशेष में दण्ड स्वरूप किसी वर्ग को बहिष्कृत समझने लगे थे तो भी कोई कारण नहीं कि उनकी संतान को भी दण्डित किया जाय चाहे वे उस अपराध से मुक्त हों जिसके लिये उनके पूर्वजों को दण्ड दिया गया था। अछूतों के बीच भी अस्पृश्यता है इसी से प्रमाणित होता है कि इस बुराई की कोई सीमा नहीं और इसका घातक प्रभाव सबों को ग्रसित करने वाला है। अछूतों के बीच में भी अस्पृश्यता वर्त्तमान है यह एक और भी कारण है कि सभ्य हिन्दू समाज से इसे जल्द से जल्द दूर किया जाय। यदि

एक अछूत इसलिये अछूत है कि वह पशु हत्या करता है, मांस, रक्त, हड्डियों और विष्ठा से उसे काम करना पड़ता है तब प्रत्येक नर्स और डाक्टर को अछूत हो जाना चाहिये और इसी तरह प्रत्येक ईसाई, मुसलमान और तथाकथित उच्चवर्गीय हिन्दू को जो भोजन या यज्ञ के लिये पशु हिंसा करते हैं उनको भी। जिस तरह कसाईखाने, ताड़ी की दुकानें, वेश्यालय पृथक रखे जाते हैं उसी तरह अछूतों को पृथक रखना चाहिये, इस तरह के तर्क में महान् पक्षपात नजर आता है। कसाईखाने तथा ताड़ी की दुकानें पृथक रखी जाती हैं और रखी जानी चाहिये भी। पर कसाइयों तथा शराब पीने वालों को तो कोई पृथक नहीं करता।

अस्पृश्यता पर आक्रमण करते समय मैंने समस्या की तह में घुसने की कोशिश की है। अतः यह बहुत ही महत्वपूर्ण बात है। अस्पृश्यता निवारण राजनीतिक शासन विधान के रूप में मिले स्वराज्य से कहीं अधिक गहरे मूल्य की वस्तु है और मैं कहूंगा कि स्वराज्य से निर्मित शासन विधान व्यर्थ का भार है यदि उसकी नीव नैतिक बल पर नहीं है और यदि वह आज लाखों पददलितों के हृदय में इस आशा का संचार नहीं करता कि यह भार उनके कंधों पर से उठाया जा रहा है।

प्रारंभिक रूप में अस्पृश्यता स्वास्थ्य सम्बन्धी नियम था और भारतवर्ष के बाहर और अन्य स्थानों में आज इसी रूप में वर्त्तमान है। मतलब यह कि एक गन्दा मनुष्य या गन्दी चीज़ अस्पृश्य है पर ज्योंहीं वह गन्दगी दूर हुई अस्पृश्यता भी हटी। अतः जो सफाई का काम करते हों, चाहे वे वैतनिक भंगी हो अथवा अवैतनिक वे तब तक अस्पृश्य हैं जब तक वे साफ नहीं हो जाते। पर यदि हम एक भंगी को सदा के लिये अस्पृश्य न

समझ इनके साथ भाई की तरह व्यवहार करें उसे सफाई कर लेने के पश्चात साफ होने का अवसर दें अथवा बाध्य करें तो वह समाज के लिये उतनी ही स्वीकृति है जितनी अन्य किसी व्यक्ति की।

मैं ऐसा विश्वास नहीं करता कि जाति भेद एक घृणित और भयावह सिद्धान्त है यदि इसे वर्णाश्रम धर्म से पृथक कर दिया जाय तो भी। हां इसकी अपनी सीमायें और त्रुटियां हैं पर अस्पृश्यता ही की तरह इसमें कोई पाप नहीं है। यदि यह अस्पृश्यता जाति-प्रथा से निकला है तो ठीक वैसे ही जैसे शरीर पर कभी कभी व्यर्थ का सूजन हो जाता है अथवा फस्ल के मैदान में घास फूस उग आते हैं। अन्त्यजों के कारण जाति प्रथा को नष्ट कर देना ठीक वसे ही भूल होगी जैसा कि शरीर को कुछ विद्रूप सूजन के कारण अथवा फसल को कुछ घास फूस उग आने के कारण नष्ट कर देना। आज के प्रचलित अर्थ में अन्त्यजता नष्ट कर देनी होगी। यह एक ऐसा अतिरिक्त बाढ है जिसको दूर करना होगा यदि हम यह चाहते हैं कि हमारा सारा शरीर नष्ट हो। अतः अस्पृश्यता की उत्पत्ति जाति प्रथा के कारण नहीं हुई परन्तु उच्च और नीच की भावना के कारण जो हिंदू धर्म में घुस आई है और उसे खोखला कर रही है अतः अस्पृश्यता पर आघात इस उच्च जाति की भावना पर है। ज्योंही अस्पृश्यता दूर हुई जाति-प्रथा अपने परिमार्जित रूप में हमारे सामने आयेगी, सच्चे वर्ण धर्म की स्थापना होगी जिसका मैं स्वप्न देख रहा हूँ। इसमें समाज के चार वर्ण होंगे जो एक दूसरे के पूरक होंगे, कोई एक दूसरे से उच्च या नीच नहीं रहेगा। हिंदू धर्म के लिये एक अङ्ग वैसा ही आवश्यक रहेगा जैसा कि दूसरा कोइ अङ्ग।

सुरापान की बुराइयां

आपको इस तर्क के भुलावे में नहीं आना चाहिये कि भारत में मद्य निषेध की बाध्यता नहीं होनी चाहिये और जो सुरा-पान करना चाहते हैं उनको उसकी सुविधा होनी चाहिये। लोगों की बुराइयों को प्रश्रय देना सरकार का काम नहीं। हम लोग वेश्यालयों के लिये लाइसेन्स नहीं देते अथवा उनके लिये नियम नहीं बनाते। हम लोग चोरों को चौर्यवृति के लिये सुविधायें नहीं देते। मैं मद्यपान को चोरी तथा वेश्या-गमिता से अधिक बुरी चीज मानता हूं। क्या यही अवसर दोनों का जनक नहीं?

सुरापान पाप के द्योतक के स्थान पर एक बुरी आदत या रोग का द्योतक है। मैं बीसों ऐसे आदमियों को जानता हूँ जो इस आदत को प्रसन्नता पूर्वक छोड़ दें यदि उनके वश की बात हो तो। मैं वैसे भी आदमियों को जानता हूँ जिन्होंने प्रार्थना की थी कि यह प्रलोभन उनके रास्ते से दूर कर दिया जाय। पर प्रलोभन के दूर कर दिये जाने पर भी वे चुरा कर पीते हैं यह मैं जानता हूँ। इसलिये मैं ऐसा ख्याल नहीं करता कि प्रलोभन को उनसे दूर कर दिया जाना गलत था। रोगियों को उनकी इच्छा के विरुद्ध भी सहायता करनी ही होगी।

मजदूरों के साथ तादात्मय उपस्थित करने के कारण मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि सुरा-पान की लत वाले मनुष्यों के

परिवार किस तरह बरबाद हो गये हैं। मैं जानता हूँ कि यदि शराब आसानी से उनकी पहुँच के बाहर होती तो वे नहीं पीते। हम लोगों के पास ऐसे प्रमाण हैं कि बहुत से पीने वाले स्वयं मद्यपान निषेध की मांग कर रहे हैं।

मद्यपान से मनुष्य की आत्मा मर जाती है और उससे वह एक ऐसे पशु में परिणत हो जाता है जिसे स्त्री, मां और बहन में विभेद करने का ज्ञान नहीं रह जाता। मैंने ऐसे आदमियों को देखा है जो मदिरा के प्रभाव में आकर यह भेद-भाव भूल जाते हैं।

मलेरिया वगैरह रोगों से जो बुराइयां होती हैं उनसे कहीं अधिक बुराइयां शराब और गांजा वगैरह से होती है। जहां प्रथम से शरीर की हानि होती है पर दूसरा तो शरीर और आत्मा दोनों को चूस लेता है।

मैं अपने बीच हजारों शराब पीने वालों की स्थिति के कायम रखने के बजाय भारत को दरिद्र रहने देना पसन्द करूंगा। मैं भारत को अशिक्षित रखने की कीमत पर भी मद्यनिषेध को पसन्द करूंगा।

वह राष्ट्र जो मद्यपान का शिकार है उसके सामने बरबादी के सिवा कुछ नहीं। इतिहास साक्षी है कि कई साम्राज्य इस आदत से नेश्तनाबूद हो गये हैं। भारत में श्रीकृष्ण की जाति के लोग इसी आदत के कारण नष्ट हो गये थे। रोमन के पतन का एक धारण यह राक्षसी आदत भी थी।

मद्य निषेध को भारत में काम में लाना जितना सहज है उतना संसार के किसी भाग में भी नहीं। क्योंकि थोड़े ही लोग पीते हैं। साधारणतः मद्यपान निन्दनीय समझा जाता है। मेरा विश्वास है कि यहां लाखों लोगों की संख्या ऐसी है जो यह भी नहीं जानते हैं कि मद्यपान क्या वस्तु है?

मेरा ख्याल है कि मस्तिष्क की सच्ची शिक्षा सारी शारीरिक अवयवों अर्थात् हाथ, पैर, आंख, कान, नाक वगैरह के उचित प्रयोग और शिक्षा द्वारा हो सकती है। दूसरे शब्दों में बालक के शारीरिक अवयवों को सचेतन प्रयोग उसके मानसिक शक्ति के विकास करने का सर्व श्रेष्ट उपाय है और कम से कम समय में होने वाला। पर जब तक शारीरिक और मानसिक विकास के साथ ही साथ आत्मा भी विकसित नहीं होती तब यह बात अधूरी रहेगी। आध्यात्मिक शिक्षा से मेरा अर्थ है हृदय की शिक्षा। मस्तिष्क का उचित और चतुर्मुखी विकास तभी हो सकता है जब कि यह बालक शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियों के साथ साथ चले। ये सब मिल एक अदृश्य एकाई है। इस सिद्धान्त के अनुसार यह सोचना की टुकड़े टुकड़े कर स्वतंत्र रूप में इनका विकास हो सकता है भारी भ्रम है।

शरीर, मस्तिष्क और आत्मा की विविध शक्तियों के उचित सामंजस्य के अभाव का दुष्परिमाण तो स्पष्ट ही हैं। वे हमारे सामने हैं; आज के दूषित वातावरण के कारण उनको देखने की हमारी शक्ति मारी गई है।

मनुष्य केवल मस्तिष्क अथवा केवल स्थूल शरीर अथवा केवल हृदय या आत्मा मात्र ही नहीं है। इन तीनों का समुचित सामंजस्य मनुष्य के पूर्ण विकास के लिये आवश्यक है और यही शिक्षा का अर्थ शास्त्र भी है।

सब के केन्द्र में हाथ के कामों को प्रतिष्ठित करना होगा। स्कूल की प्रदर्शनी अथवा निरर्थक कुछ खिलौने का बनाना ही हाथों की शिक्षा के उद्देश्य नहीं। इससे ऐसी चीजें तैयार होनी चाहिए जो बाजारों में बिक सकें। जिस तरह कारखानों के आरंभिक दिनों में कोड़ों की मार के भय से लड़के काम करते थे उस रूप में लड़के यहां काम नहीं करेंगे। वे इसलिये करेंगे क्योंकि इसमें

इनको आनन्द मिलता है और उनकी मानसिक शक्ति का विकास होता है।

भारत के लिये निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा में मेरा पूरा विश्वास है। मेरा यह भी विश्वास है कि बालकों को कोई उपयोगी कारीगरी सिखलाकर और इसे उनके मानसिक शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियों के विकास का साधन बनाकर ही हम इस उद्देश्य में सफल होंगे। इससे हमारे ग्रामों में होने वाला उत्तरोत्तर ह्रास बन्द होगा और एक अधिक न्याय पूर्ण सामाजिक व्यवस्था की नींव पड़ेगी जिसमें धनिकों और गरीबों का कृत्रिम विभेद नहीं रहेगा और जिसमें प्रत्येक को जीवन-निर्वाह लायक मजदूरी मिलेगी और सबको स्वतंत्रता के अधिकार प्राप्त होंगे।

कताई और बुनाई जैसी दस्तकारी के द्वारा प्राथमिक शिक्षा की जो मेरी योजना है वह एक मौन सामाजिक क्रान्ति की नोक है जिसके गर्भ में बहुत ही महत्व-पूर्ण बातें छिपी पड़ी हैं। इसके द्वारा गांवों और शहरों में स्वस्थ और नैतिक संबन्ध स्थापित करने का आधार मिलेगा और आज की सामाजिक अनिश्चयता और वर्गों के बीच जो विषमय संबन्ध है उसे दूर करने में सहायता मिलेगी।

राष्ट्रीय भाषा और लिपि

ऐसा मेरा विश्वास है कि—

१ हिंदी, हिंदुस्तानी और उर्दू-इन तीन शब्दों से एक ही भाषा का अर्थ निकलता है जिसे उत्तर भारत के हिंदू और मुसलमान दोनों बोलते हैं और जो देवनागरी या फारसी दोनों लिपियों में लिखी जाती है।

२ उर्दू शब्द के प्रयोग के प्रचलन में आने के पूर्व हिंदू और मुसलमान दोनों ही इसे हिंदी कहते थे।

३ आगे चलकर (तिथि मुझे ठीक मालूम नहीं) इसी भाषा के लिये हिंदुस्तानी शब्द का प्रयोग होने लगा।

४ हिंदू और मुसलमान दोनों को ऐसी भाषा बोलनी चाहिये जिसे उत्तर भारत के अधिक से अधिक लोग समझते हों।

५ साथ ही बहुत से हिन्दू और मुसलमान क्रमशः संस्कृत और फारसी अथवा अरबी के शब्दों का प्रयोग करेंगे ही। जब पारस्परिक अविश्वास और अलगाव की भावना मौजूद है तबतक इसे सहन करना ही पड़ेगा। वे हिन्दू जो मुस्लिम विचारों की जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं वे फारसी लिपि में लिखी उर्दू सीखेंगे और उसी तरह जो मुसलमान हिंदू विचारों से अवगत होना चाहेंगे वे देवनागरी में लिखी हिंदी का अध्ययन करेंगे।

६ अन्त में जब हमारा हृदय एक हो जायेगा और सारे भारत को प्रान्तों को नहीं, अपना देश मानने में गर्व की भावना जगेगी और एक ही वृक्ष के विविध फलों को पहचानने और आनन्द लेने का भाव आयेगा तब हम एक लिपि में लिखी एक सार्वजनिक भाषा का आविष्कार करलेंगे साथ ही प्रान्तीय व्यवहार के लिये प्रान्तीय भाषायें भी बनी रहेंगी।

७ एक ही लिपि या एक तरह की हिन्दी किसी प्रान्त जिला या लोगों पर लादने की कोशिश देश के यथार्थ हित में बाधक होगा।

८ एक भाषा के प्रश्न को धार्मिक विभेदों से अलग करके देखना होगा।

९ रोमन लिपि भारत की सार्वजनिक लिपि न हो सकती है और न उसे होना चाहिये। प्रतिद्वन्द्विता केवल फारसी और देवनागरी लिपियों में हो सकती है। इसके वास्तविक गुणों के अलावा देवनागरी को ही सारे भारत की एक लिपि होनी चाहिये क्योंकि प्रायः सब प्रान्तीय लिपियां इससे ही निकली हैं और लोगों के लिये इसका सीखना बड़ा आसान है। साथ ही मुसलमानों पर अथवा जो इसे नहीं जानते हैं उन पर इसको लादने का प्रयत्न भी नहीं होना चाहिये।

१० यदि हिन्दी से उर्दू पृथक समझी जाय तो मैंने उर्दू की सेवा की है जब कि मेरे कहने पर इन्दौर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने मेरी दी गई परिभाषा को स्वीकार किया और नागपुर में, मेरे कहने पर, भारतीय साहित्य परिषद ने उसी परिभाषा को मान्यता दी और अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार के लिये व्यवहार में आने वाली भाषा को हिंदुस्तानी कहा। इससे हिंदू और मुसलमान दोनों को एक सार्वजनिक भाषा को समृद्ध करने

और प्रांतीय विचारों को उस भाषा में व्यक्त करने का पूरा अवसर मिला।

आज मुसलमानों के लिए देवनागरी लिपि पर जोर देना कल्पनातीत है। हिंदुओं की बृहद जन संख्या के लिए अरबी लिपि पर जोर देना और भी अकल्पनीय है। इसीलिये परिभाषा में मैंने कहा है कि हिंदी या हिंदुस्तानी वह भाषा है जो उत्तर भारत के हिन्दू और मुसलमान दोनों बोलते हैं और चाहे वह देवनागरी लिपि में लिखी जाती हो अथवा उर्दू में। इसके विरोध होने पर भी मैं उस परिभाषा को छोड़ नहीं सकता। पर निस्सन्देह एक देवनागरी के लिये आन्दोलन चला है मैं पूर्ण रूप से जिसके साथ हूँ। यह आन्दोलन देवनागरी को भिन्न भिन्न प्रान्तों की भाषा के लिये विशेषतः जो संस्कृत प्रधान हैं एक लिपि स्वीकृत करना चाहता है। जो हो भारत की सब भाषाओं के बहुमूल्य रत्नों को देवनागरी लिपि में अनुवाद करने का प्रयत्न हो रहा है।

उन भाषाओं के लिये जो संस्कृत से निकली हैं अथवा जिनका संस्कृत से घनिष्ट सम्बन्ध है एक लिपि होनी ही चाहिये और वह निस्संदेह देवनागरी है। एक प्रान्त के लोगों के लिये दूसरे प्रान्त की भाषा को सीखने में लिपियों की विभिन्नता से रुकावट पड़ती है। यूरोप जो एक राष्ट्र नहीं है फिर भी उसने एक लिपि अपना ली है। तब भारत जो एक राष्ट्र होने का दम भरता है और है भी, क्यों नहीं एक लिपि अपनाये। मुझे मालूम है कि जब मैं एक ही भाषा के लिये दोनों लिपियों अर्थात् देवनागरी और उर्दू के अपनाये जाने की बात करता हूँ तो यह कुछ बेतुकासा जँचता है। पर यह बेतुकापन मूर्खता पूर्ण नहीं है। आज हिन्दू मुस्लिम संघर्ष जारी है। यह उचित और आवश्यक है कि शिक्षित हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के लिये

जहां तक हो सके अधिक आदर और सहिष्णुता का परिचय दें। इसीलिये देवनगरी या उर्दू लिपि को चुनना इच्छाधीन कर दिया गया है। प्रसन्नता की बात है कि प्रान्त और प्रान्त में संघर्ष नहीं है। अतः ऐसे सुधार की आवश्यकता है जो एकाधिक रूप में प्रान्तों को अधिकाधिक समीप ला सकें। यह याद रखना चाहिये कि जनता में अत्यधिक संख्या अशिक्षितों की है। उन पर केवल भावावेश के कारण अथवा मानसिक शैथिल्य के कारण ही भिन्न-लिपि को लादना घातक होगा।

मुझे पता चला है आसाम की कुछ जातियों को देवनागरी लिपि के बजाय रोमन लिपि के द्वारा लिखना पढना सिखाया जा रहा है। मैं कह चुका हूँ कि देवनागरी लिपि भारत की सार्वजनिक लिपि हो सकती है चाहे सुधार कर या मौजूदा रूप में। जब तक मुसलमान स्वेच्छा से देवनगरी लिपि की वैज्ञानिक उच्चता नहीं स्वीकार कर लेते तब तक उर्दू या फारसी लिपि भी साथ साथ चलती रहेगी। पर मौजूदा प्रश्न के लिये यह असंगत है। दोनों लिपियों के साथ रोमन लिपि कभी नहीं चल सकती। रोमन लिपि के समर्थक दोनों को दूर कर देंगे। पर हमारे भाव और विज्ञान दोनों ही रोमन लिपि के विरुद्ध हैं। इसका एक मात्र बल यही है कि छापे और टाइप के लिये सुविधा-जनक है। परन्तु इसके सीखने के लिये लाखों आदमियों पर जो जोर पड़ेगा उसके सामने यह कुछ नहीं। वे लोग जो अपने साहित्य को प्रान्तीय लिपि या देवनागरी लिपि में अध्ययन करना चाहते हैं उन्हें इससे कुछ भी सहायता नहीं मिल सकती। हिन्दुओं और मुसलमानों के लिये भी देवनागरी लिपि का सीखना सहज है क्यों कि प्रान्तीय लिपियां प्रायः इससे ही निकली है। मैंने जान बूझकर मुसलमानों को शामिल किया है। मसलन बंगाली मुसलमानों की मातृ-भाषा

बंगाली है और तामिल के मुसलमानों की तामिल। आज जो उर्दू प्रचार के लिये आन्दोलन हो रहा है उसका परिणाम यह होगा कि सारे भारत के मुसलमानों को अपनी मातृ-भाषा के अलावा उर्दू सीखनी पड़ेगी। अपनी पवित्र कुरान को जानने के लिये उन्हें अरबी जानना ही पड़ेगा। पर चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान उन्हें रोमन लिपि जानने की जरूरत कभी नहीं पड़ेगी सिवाय इसके कि वे अंग्रेजी सीखना चाहें। उसी तरह जो हिन्दू अपने धर्म-ग्रन्थों का मौलिक अध्ययन करना चाहते हैं उन्हें देवनागरी जाननी ही पड़ेगी। अतः देवनागरी को सार्वजनिक बनाने का जो आन्दोलन है वह दृढ़ आधार पर स्थित है। रोमन लिपि का प्रवेश ऊपर से थोपी चीज है जो कभी भी लोकप्रिय नहीं हो सकती। सच्ची जन जागृति के प्रवाह में सब बाहर से थोपी चीजें बहजायेंगी। जन जागृति आने वाली ही है कुछ कारणों को देखकर हम उसके आगमन के समय का जो अन्दाज लगा सकते हैं उसके पहले ही। तो भी लाखों के जागरण में समय तो लगता ही है। इस जागरण को यकायक पैदा तो नहीं किया जासकता। यह तो शनैः २ दिये रूप में आता जाता है अतः राष्ट्रीयकार्यकर्ता गण तो जन जागरण की मनोवृत्ति को पहचान इस कार्य की प्रगति को तेज भर कर सकते हैं।

अंग्रेजी भाषा का स्थान

यह मेरी पक्की राय है कि जिस रूप में यह अंग्रेजी शिक्षा दी जाती रही है उसने अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त भारतीयों को दुर्बल बना दिया है। उससे भारत के विद्यार्थियों की स्वाभाविक शक्ति पर अत्याधिक भार पड़ा है और हमें उसने अनुकरण प्रिय बना दिया है। यहां की भाषाओं को दूर कर देना ब्रिटिश और भारत के संबन्ध के इतिहास का एक बड़ा ही दुखमय अध्याय है। यदि उन्हें अंग्रेजी में सोचने और अंग्रेजी ही में अपने विचारों की अभिव्यक्त की अड़चन नहीं होती तो राममोहन राय और भी बड़े सुधारक होते और लोकमान्य तिलक और भी बड़े विद्वान। लोगों पर उनका प्रभाव यद्यपि आश्चर्य-जनक था तथापि यदि जरा कम कृत्रिम वातावरण में उनका लालन पालन होता तो वह प्रभाव और भी अधिक होता।

इसमें संदेह नहीं कि अंग्रेजी साहित्य की अनुपम निधि से उन्हें लाभ हुआ। पर ये लाभ तो उन्हें अपनी भाषाओं के द्वारा भी प्राप्त हो सकते थे। अनुवाद करने वालों की जाति को पैदा कर कोई भी देश राष्ट्र नहीं बन सकता। कल्पना कीजिये कि यदि उनके पास बाइबिल की कोई अधिकृत पुस्तक नहीं होती तो अंग्रेजों का क्या होता? मेरा विश्वास है कि चैतन्य, नानक, गुरु गोविन्दसिंह, शिवाजी और प्रताप, राम मोहन और तिलक से बड़े व्यक्ति थे। मैं जानता हूँ कि तुलनायें बेतुकी होती हैं। अपने अपने तईं सब बड़े हैं। पर परिणाम के देखने से पता

चलता है कि राम मोहन और तिलक का जनता पर प्रभाव उतना गंभीर और स्थायी नहीं जितना उन लोगों का जिन्हें अधिक अनुकूल परिस्थितियों में जन्म लेने का सौभाग्य था। जिन बाधाओं का उन्हें सामना करना पड़ा उन्हें देखते तो वे अति महान थे और यदि जिस पद्धति से उन्हें शिक्षा मिली थी उससे वे बाधित नहीं होते तो वे कुछ ज्यादा कर सकते थे। मैं इस बात को स्वीकार नहीं करता कि अंग्रेजी भाषा के ज्ञान के बिना राजा और लोकमान्य के जो विचार थे वे पैदा ही नहीं होते। जितनी भ्रमात्मक बातें भारत में फैली हुई हैं उनमें इससे बढकर कोई नहीं कि स्वतंत्रता के विचार तथा विचारों की स्पष्टता के लिये अंग्रेजी भाषा का ज्ञान आवश्यक है। यह याद रखना चाहिये कि गत पचास वर्षों से देश में एक ही शिक्षा पद्धति प्रचलित रही है और लोगों के ऊपर विचारों का एक ही माध्यम लादा जाता रहा है। हमारे पास आंकड़े नहीं है जिनसे पता चले कि स्कूल और कालेजों की वर्तमान शिक्षा-पद्धति के अभाव में हमारा क्या रूप होता। पर इतना हमें मालूम है कि पचास वर्षों पूर्व से आज भारत अधिक दरिद्र है, अपनी रक्षा करने की योग्यता उसमें पहले से कम है और यहां के बालकों में प्राणवत्ता की कमी है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि शासन पद्धति के दोषों के कारण ही यह परिस्थिति उत्पन्न हुई है। शिक्षा-पद्धति का दोष इसका सबसे दूषित अंश है। भूलसे इसका कल्याण किया गया और भूल से ही इसका बीजारोपण किया गया क्योंकि अंग्रेजी शासकों का यह विश्वास था कि देशी-पद्धति महज वाहियात है। इसका पालन पाप रूप में हुआ है क्योंकि भारतीय शरीर मस्तिष्क और आत्मा को छोटा कर देने की इसकी प्रवृत्ति रही है।

अंग्रेजी आज पढी जाती है अपने आर्थिक और तथा

कथित राजनैतिक महत्व के कारण। हमारे बालक सोचते हैं, और ऐसा सोचना वर्तमान परिस्थिति में ठीक भी है, कि अंग्रेजी के बिना उन्हें सरकारी नौकरियां नहीं मिलसकतीं। लड़कियों को अंग्रेजी शिक्षा इसलिये दी जाती है क्योंकि इससे उन्हें विवाह का पासपोर्ट मिल जाता है। मैं ऐसी महिलाओं को जानता हूँ जो अंग्रेजी केवल इसलिये सीखना चाहती हैं कि वे अंगरेजों से अंगरेजी में बातचीत कर सकें। मैं ऐसे पतियों को जानताहूं जिन्हें इस बात का अफसोस है कि उनकी स्त्रियां उनसे तथा उनको मित्रों से अंग्रेजी में बातें नहीं कर सकती। मैं ऐसे परिवारों को जानता हूँ जहां अंग्रेजी को मातृ भाषा बनाने की कोशिश की जा रही है। सैंकड़ों नवयुवकों का विश्वास है कि अंग्रेजी भाषा के ज्ञान के बिना भारत की स्वतंत्रता असम्भव है। यह दोष हमारे समाज में यहां तक फैल गया है कि शिक्षा का अर्थ ही अंग्रेजी भाषा-ज्ञान समझा जाता है। ये सब बातें हमारी गुलामी और पतन के चिह्न हैं। यह हमारे लिये असह्य है कि हमारी भाषाओं को इस तरह कुचला गया है और उन्हें बुभुक्षित रखा गया है। माता-पिता अपने पुत्रों को और पति अपनी पत्नी को अपनी भाषा में पत्र न लिख कर अंग्रेजी में लिखे यह मेरे लिये असह्य है।

मैं यह नहीं चाहता कि मेरे घर की चारों तरफ दीवाल खड़ी कर दी जाय और उसकी खिड़कियां मूंद दी जायें। मैं चाहता हूँ कि सब देशों की संस्कृति की हवा स्वतंत्रता पूर्वक हमारे ऊपर चारों ओर बहती रहे पर मैं यह नहीं चाहता कि हमारे पैर उखड़ जांय। मैं दूसरे के घर में उच्चक्के, भिखमंगे या गुलाम की तरह नहीं रहना चाहता। मैं अपनी बहनों पर अंग्रेजी शिक्षा का अनावश्यक भार झूठी शान-शौकत और सन्देहात्मक सामाजिक लाभ के लिये नहीं लादना चाहता।

मैं चाहूंगा कि साहित्यिक अभिरुचि रखने वाले नवयुवक और नवयुवतियां ज्यादा से ज्यादा अंग्रेजी तथा संसार की अन्य भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करें और बोस, राम या टैगोर की तरह भारत तथा संसार को अपनी शिक्षा से लाभान्वित करें पर यह मैं कभी नहीं चाहता कि वे अपनी भाषा से शर्म करें अथवा सोचें कि अपने ऊँचे से ऊँचे विचारों को अपनी भाषा में वे व्यक्त नहीं कर सकते। मेरा धर्म जेल खाने का धर्म नहीं। ईश्वर के निर्मित तुच्छातो तुच्छ जीव के लिये भी इसमें स्थान है। पर घमण्ड जाति धर्म या रंग के गर्व के लिये अभेद्य है।

विदेशी शासन में बहुत सी बुराइयां हैं पर देश के नव जवानों पर इस घातक विदेशी माध्यम को लादे जाने को इतिहास सबसे बड़ा कलंक कहेगा। इसने राष्ट्र की शक्ति को चूस लिया है। इसने पढ़ने वालों की आयु को कम कर दिया है। इसने उन्हें जनता से दूर कर दिया है और शिक्षा को अनावश्यक रूप से खर्चीला बना दिया है। यदि यही क्रम जारी रहा तो राष्ट्र की आत्मा का नाश हो जायेगा। अतः भारत के शिक्षित लोग इस विदेशी माध्यम के इन्द्रजालिक प्रभाव से अपने को मुक्त करें तो उनके लिये तथा लोगों के लिये उतना ही अच्छा।

विद्यार्थियों के लिये नियम

(१) विद्यार्थियों को किसी दल की राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिये। वे विद्यार्थी हैं, अन्वेषक हैं, राजनीतिज्ञ नहीं।

(२) उन्हें राजनैतिक हड़तालें नहीं करनी चाहिये। उन्हें वीरों का आदर्श रखना चाहिये पर उनके उत्तम सद्गुणों का अनुकरण करने से ही उनके प्रति श्रद्धा का प्रदर्शन हो सकता है उनके जेल जाने, मरने या फांसी पड़ने पर हड़तालें करने से नहीं। यदि उनका दुख असह्य है और सब विद्यार्थियों के भाव एक से हैं तो ऐसे ऐसे अवसरों पर प्रिंसिपल की राय से स्कूल या कॉलेज बन्द कर दिये जा सकते हैं। यदि प्रिंसिपल उनकी बातें नहीं सुनता तो एक सभ्य तरीके से संस्था को छोड़ देने के लिये वे स्वतंत्र हैं जब तक मैनेजर लोग पश्चाताप नहीं करें और उन्हें बुलावें नहीं। किसी भी हालत में अपने से मतभेद रखने वालों या अधिकारी वर्ग पर दबाव नहीं डालना चाहिये। उन्हें यह विश्वास होना चाहिये कि यदि उनमें एकता है और उनका आचरण गौरवान्वित है तो उनकी विजय अवश्यंभावी है।

(३) उन्हें वैज्ञानिक तरीके से कताई का यज्ञ करना चाहिये। उनके यंत्र साफ, सुथरे और चुस्त दुरुस्त हालत में रहने चाहिये। यदि संभव हो तो उन्हें स्वयं बनाना सीखना चाहिये। स्वभावतः उनके सूत अच्छे से अच्छे दर्जे के होंगे। वे खादी साहित्य का अध्ययन करेंगे और इसके आर्थिक, सामाजिक नैतिक और राजनैतिक पहलुओं को समझेंगे।

(४) वे सर्वदा खादी पहनने वाले होंगे और विदेशी तथा मशीन की बनी चीजों के बजाय ग्राम की बनी चीजों को व्यवहार में लायेंगे।

(५) उन्हें 'वन्दे मातरम' तथा राष्ट्रीय झंडे को दूसरे पर लादना नहीं चाहिये। वे अपने बटनों पर राष्ट्रीय झंडा धारण कर सकते हैं पर दूसरों को वैसा करने के लिये बाध्य नहीं कर सकते।

(६) वे तिरंगे झंडे के सिद्धान्त अपने पर लागू कर सकते हैं तथा अपने हृदयों से साम्प्रदायिकता एवं अस्पृश्यता को अवश्य दूर रखें। वे अपने जैसे विचार रखने वालों को साथ और हरिजनों के साथ अपने भाई बन्धु के समान सच्ची मैत्री की स्थापना कर सकते हैं।

(७) अपने घायल पड़ोसियों को प्राथमिक सहायता पहुँचाना और आसपास के गांवों की सफाई करना और वहां के बालकों और प्रौढों को शिक्षा देना उनके लिये लाजिमी होगा।

(८) उन्हें आज के दुहरे रूप में अर्थात् दो भाषाओं और दो लिपियों के रूप में राष्ट्रीय भाषा हिन्दुस्तानी को सीखना होगा ताकि वह चाहे हिन्दी बोली जाय या उर्दू, चाहे नागरी लिपि में लिखा जाय या उर्दू लिपि में दोनों में उन्हें कोई दिक्कत न हो।

(९) जो कुछ नई बात वे सीखते हैं उन्हें अपनी मातृभाषा में अनुवादित करना होगा और अपने साप्ताहिक गश्ती में उसे अपने पास के गांवों में प्रचार करना होगा।

(१०) वे कोई कार्य गुप्त रूप से नहीं करेंगे। उन्हें अपने व्यवहार में ईमानदार रहना होगा। उन्हें पवित्र और संयमित जीवन व्यतीत करना होगा, निर्भीक बनना होगा, अपने

कमजोर साथियों की रक्षा में सदा तत्पर रहना होगा और अपने प्राणों को खतरे में डाल कर भी दंगों को शान्त करना होगा। और संघर्ष का अखिरी कदम आये तो अपनी संस्था का परित्याग ही नहीं, आवश्यकता पड़ने पर, देश की स्वतंत्रता के लिये अपना भी बलिदान कर देना होगा।

(११) अपने साथ पढने वाली छात्राओं के प्रति उनका व्यवहार उचित और उदारतापर्ण होना चाहिये ।

ऊपर जो कार्यक्रम विद्यार्थियों के लिये बनाया गया है उसे करने के लिये विद्यार्थियों को समय निकालना होगा। में जानता हूं कि वे आलस्य में बहुत सा समय गंवाते हैं । वे मित व्यवहार के द्वारा घंटों की बचत कर सकते हैं। मैं किसी विद्यार्थी पर अनुचित बोझ नहीं डालना चाहता । अतः मैं प्रत्येक देशभक्त विद्यार्थी को सलाह देता हूं कि वे एक वर्ष का समय दें एक बार ही नहीं पर वह समय सारे अध्ययन काल में फैला हो। उन्हें मालूम होगा कि यह एक वर्ष का समय समय की बरबादी नहीं होगी। इस प्रयत्न के द्वारा उनके मानसिक, नैतिक और शारीरिक शक्ति का विकास होगा। साथ ही वे अध्ययन के साथ साथ देश के स्वातंत्र्य आन्दोलन में पर्याप्त योग दान कर सकेंगे।

आर्थिक बनाम नैतिक उन्नति

क्या आर्थिक उन्नति व वास्तविक उन्नति एक दूसरे से टकराती हैं ? मैं समझता हूँ कि आर्थिक उन्नति से हमारा अर्थ होता है असीमित आदि भौतिक सुविधायें और वास्तविक उन्नति का अर्थ है नैतिक उन्नति जो मनुष्य के अन्दर शाश्वत तथ्यों की उन्नति का दूसरा नाम है इसी बात को यों रख सकते हैं "क्या नैतिक उन्नति भी आधिभौतिक उन्नति के अनुपात से नहीं बढती ?" मैं जानता हूँ कि हमारे सामने जो प्रश्न है उससे यह कुछ अधिक विस्तृत प्रश्न है। पर मेरा ऐसा ख्याल है कि जब हम छोटी बातों की बातें करते हैं उस समय भी हमारा ध्यान बड़ी बातों की ओर रहता है। क्योंकि हम लोग इतना विज्ञान अवश्य जानते हैं कि यह महसूस कर सकें कि इस दृश्य जगत में पूर्ण शान्ति जैसी कोई चीज नहीं। अतः यदि अधिभौतिक उन्नति नैतिक उन्नति के साथ टकराती नहीं है तो उस नैतिक उन्नति की अभिवृद्धि करनी ही चाहिये। इस विस्तृत प्रश्न में कुछ अविश्वासी लोग जिस बेतुके तरीके से अपनी बात को सामने रखते हैं उससे हम सहमत नहीं हो सकते। स्वर्गीय सर विलियम विलसन हंटर ने लिखा है कि भारत के तीस करोड़ निवासी दिन में एक बार ही भोजन पाते है। इस बात की भयानकता ने उन्हें आतंकित कर रखा है और वे कहते हैं कि उनकी नैतिक उन्नति की बात सोचने या करने के पहले उनकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति होनी

चाहिये। वे कहते हैं कि इनके लिये तो आधिभौतिक उन्नति नैतिक उन्नति का नाश कर देती है। इसके बाद वे कूद कर दूसरी बात पर चले जाते हैं कि जो बात ३० करोड़ लोगों के लिये सत्य है वह संसार के लिये भी सत्य है। वे भूल जाते हैं कि कुछ ठोस उदाहरणों के आधार पर कोई सिद्धान्त बना लेना भ्रमिक है। मेरे यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह निष्कर्ष कितना हास्यास्पद है। किसी ने यह कभी नहीं कहा है कि पीस डालने वाली दरिद्रता से नैतिक अधः पतन के सिवा और कुछ हो सकता है। प्रत्येक मनुष्य को जीने का हक है अतः भोजन प्राप्ति के साधन, पहनने के कपड़े और रहने के घर प्राप्त करने का हक भी है। पर इस सीधी सी बात के लिये अथशास्त्र विशारदों तथा उनके नियमों की सहायता की हमें आवश्यकता नहीं।

संसार के प्रत्येक धर्म के शास्त्रों में यह आदेश सामान्य रूप से पाया जाता है कि "फल की परवाह मत करो"। एक सुव्यस्थित समाज में जीविकोपार्जन की बात अति सहज होनी चाहिये और होती भी है। वास्तव में देश की अव्यवस्था की पहचान इससे नहीं होती कि उनमें कितने करोड़पति हैं पर पर इससे होती है जनता को कहां तक भर पेट भोजन मिलता है। अब इसी बात पर विचार करना है कि आधिभौतिक उन्नति का अर्थ नैतिक है इस सिद्धान्त का कहां तक सार्वभौमिक प्रयोग हो सकता है।

कुछ उदाहरण लें। रोम में अधिक भौतिक समृद्धि से उसका नैतिक पतन हुआ। यही हालत मिश्र की हुई और दूसरे देशों की भी जिनका ऐतिहासिक ज्ञान हमें है। श्री कृष्ण के वंशजों का पतन हुआ जब वे धन के मद में भूल रहे थे। हम अस्वीकार नहीं करते कि रौकफेलर में और कारनेगी जैसे धनाढ्यों

में साधारण नैतिकता नहीं है पर हम लोग स्वयं प्रसन्नता पूर्वक उनके उपर विचार करते समय अपना मापदण्ड कुछ शिथिल कर देते हैं। मेरा मतलब यह है है कि हम लोग उनसे नैतिकता के ऊँचे मापदण्ड के पालन करने की आशा भी नहीं करते। उनके लिये भौतिक उन्नति का अर्थ नैतिक उत्थान होना कोई आवश्यक नहीं है। दक्षिण अफ्रिका में हजारों देश वासियों के साथ बहुत ही घनिष्टता पूर्वक रहने का मुझे अवसर मिला है। वहां मैंने एक बात अनिवार्य रूप से पाई। जितना ही अधिक धन उतना ही अधिक नैतिक पतन सत्याग्रह के नैतिक युद्ध को अग्रसर करने में गरीबों ने जितनी सहायता पहुँचाई उतनी धनिकों ने नहीं। गरीबों के आत्मसम्मान के भाव को जितना आघात पहुँचा था उतना धनिकों के नहीं। यदि मेरा कहना खतरनाक न हो तो मैं यहां तक कहूँगा कि धन से वास्तविक उन्नति में बाधा ही पड़ी है। मेरा ख्याल है कि विश्व के धार्मिक ग्रन्थों में आधुनिक पाठ्य पुस्तकों से कहीं अच्छे और विश्वासनीय आर्थिक कानून लिखे हैं। आज जिस प्रश्न पर हम विचार कर रहे हैं कोई नया नहीं। आज से दो हजार वर्षों पहले ईसा मसीह से यही प्रश्न पूछा गया था। सेन्ट मार्क ने इस दृश्य का बड़ा सजीव वर्णन किया है। ईसा गम्भीर चिन्तन शील हैं। वे ईमानदार हैं। वे अनन्त की बात करते हैं। वे अपनी दुनियां को पहचानते हैं। वे अपने समय के सर्वश्रेष्ठ अर्थ शास्त्री हैं। वे समय और स्थान की भी बचत कर सकें, वे इनसे ऊँचे उठ गये। उनके पास एक मनुष्य दौड़ता आता हैं और घुटने टेक कर पूछता है "ए मेरे अच्छे स्वामी! मैं क्या करूं जिससे अनन्त का जीवन का अधिकारी हो सकूं।" ईसा ने उससे कहा 'तुम मुझे अच्छा क्यों कह रहे हो? अच्छा तो ईश्वर के सिवा दूसरा कोई नहीं है। तुम धर्म आज्ञाओं को जानते ही हो। व्यभिचार

मत करो। हिंसा मत करो। चोरी मत करो। झूठी गवाही मत दो। धोखा मत दो। अपने माता-पिता का आदर करो।" उसने उत्तर दिया "स्वामी! इन बातों का मैंने लड़कपन से ही पालन किया है।" तब ईसा ने प्यार भरी दृष्टि से देखते हुए उससे कहा, "तुम में एक चीज़ का अभाव है। जावो, जो कुछ तुम्हारे पास है उसे बेच दो, और गरीबों को दे दो, तुम्हें स्वर्ग का खजाना मिलेगा; आवो, क्रूस धारण करो और मेरे पीछे पीछे चलो।" इस बात से वह उदास हो गया और दुखी हो लौट गया क्योंकि उसके पास बहुत धन था। ईसा ने चारों तरफ अपने शिष्यों को देखकर कहा "जिनके पास धन है उनके लिये स्वर्ग के राज में पहुँचना कितना कठिन है।" शिष्यों को इस बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ। पर ईसा ने जबाब दिया और कहा "बच्चों! जिनका धन में विश्वास है उनके लिये स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करना कितना कठिन है। सूई की आंख में से होकर ऊँट का निकलजाना धनिक के स्वर्ग के राज्य में प्रवेश कर जाने से सहज है।" यह श्रेष्ठतम शब्दों में लिखा जीवन का शाश्वत सिद्धांत है जो अंग्रेजी भाषा में लिखा जा सकता है। पर शिष्यों ने अविश्वास पूर्वक सर हिलाया जैसा आज हम करते हैं उसी तरह उन्होंने ईसा से कहा "देखिये न, व्यवहार में तो यह नियम किस तरह असफल होता है। यदि हम सब कुछ बेचदें और अपने पास कुछ न रखें तो हमारे पास खाने को कुछ भी नहीं रहेगा। हमारे पास धन होना चाहिये अन्यथा हम नैतिक भी नहीं हो सकते!" उन्होंने अपनी बात यों कही, वे अत्यन्त आश्चर्य में पड़ गये और आपस में कहने लगे "तो कौन बच सकता है?" ईसा ने उनकी ओर देख कर कहा "हां आदमियों के लिये यह असम्भव है पर ईश्वर के लिये नहीं क्योंकि ईश्वर के लिये तो सब चीजें सम्भव हैं।"

तब पीटर ने कहा 'लो, हमने अपना सब कुछ परित्याग किया और तुम्हारे पीछे चले। ईसा ने कहा "मैं सच कहता हूँ कि ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो मेरे लिये या धर्म के लिये घर, भाई-बहन, मां-बाप, बीबी-बच्चे या जमीन छोड़ता है उस सौगुना ज्यादा नहीं मिले। उसे इस जीवन में घर, भाई-बहन, मां, बच्चे और जमीन मिलती है और आगे आने वाले संसार में शाश्वत जीवन। पर बहुत से जो सब से आगे हैं पीछे हो जायेंगे और जो पीछे हैं सब से आगे। यहां आपको नियम पालन करने का स्वाभाविक परिणाम मिला है चाहे तो इसे पुरस्कार भी लें। मैंने दूसरे गैर हिन्दू धर्म शास्त्रों से इसी तरह के उदाहरणों को देने का कष्ट नहीं किया है और ईसा के बताये नियम के समर्थन में अपने ऋषियों के प्रवचनों को जो बाइबिल से भी संयुक्त भाषा में है उद्धृत कर आपको अपमानित नहीं करना चाहता। हमारी बातों के समर्थन के सब से बड़ा प्रमाण संसार के श्रेष्ट उपदेशकों की जीवनियों से ही है। ईसा, मुहम्मद, बुद्ध, नानक, कबीर, चैतन्य, शंकर, दयानन्द, राम कृष्ण इत्यादि ऐसे व्यक्ति थे जिनका प्रभाव हजारों पर था और उन्होने उनके चरित्रों को ढाला था। उनके रहने से संसार समृद्ध ही हुआ है और वे वैसे व्यक्ति थे जिन्होंने जान बूझ कर गरीबी को गले लगाया था।

यदि मेरा यह विश्वास नहीं होता कि जिस अंश में हम लोगों ने आधुनिक भौतिकवाद के पागलपन को अपना ध्येय बना रखा है उस अंश में उन्नति के शिखर से गिरे हैं तो मैं इस विषय पर इतना तूल देकर नहीं लिखता। जिस अर्थ में मैंने कहा है उस अर्थ में आर्थिक उन्नति वास्तविक उन्नति में बाधक है ऐसा मेरा विश्वास है। अतः प्राचीन आदर्श यह रहा है कि अर्थोत्पादक व्यापारों पर नियंत्रण किया जाय। इससे

सारी भौतिक महत्वकांक्षा का अन्त नहीं हो जाता। हमारे बीच ऐसे आदमी रहने चाहिये और वे सदा रहे हैं जिन्होंने धनोपार्जन ही अपने जीवन का ध्येय बनाया है। पर हमने सदा इसे आदर्श च्युति के ही रूप में ग्रहण किया है। यह जानकर प्रसन्नता होती है कि हमारे बीच ऐसे धनाढ्य व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने महसूस किया है कि स्वेच्छा से दरिद्रता का कारण उनके लिये अधिक श्रेयकर होता। तुम ईश्वर और लक्ष्मी दोनों की साथ ही सेवा नहीं कर सकते, यह एक अति महत्व पूर्ण आधिक सिद्धान्त है। हमें दोनों में एक को चुनलेना है। पश्चिमीय राष्ट्र आधिभौतिकता के राक्षस के पंजों में पड़े कराह रहे हैं। उनकी नैतिक उन्नति रुक गई है। वे रुपया आना पाई के द्वारा उन्नति को नापते हैं। अमेरिका में तो धन ही मापदण्ड बन गया है। मैंने अपने बहुत से देशवासियों को कहते सुना है कि हम लोग अमेरिका की तरह धन पैदा तो करेंगे पर हमारा साधन दूसरा होगा। मैं जोर देकर कहूँगा कि यह प्रयत्न अवश्य ही असफल होगा। हम लोग एक ही क्षण में "चुतुर, गम्भीर और क्रुद्ध" नहीं हो सकते। मैं चाहूँगा कि हमारे नेता गण संसार में नैतिकता में सर्वश्रेष्ठ बनने की हमें शिक्षा दें। कहा जाता है कि हमारा देश कभी देवों की निवास भूमि था एक ऐसा देश जहां की भूमि कारखानों और मिलों का धुँआ और भाप से भयवह हो गई है, जिसकी सड़कों पर असंख्य मोटर गाड़ियों दौड़ती रहती हों जिनमें ऐसे आदमी भरे हों जो यह नहीं जानते हैं कि वे क्या चाहते हैं, जो भूले भूले से रहते हों बाक्सों में अपरिचितों के बीच ठूस दिये जाने के कारण जिनके मिजाज बौखलाये से हों, जो एक दूसरे को उनका बश चले तो निकाल बाहर करें, ऐसे देश में देवताओं के निवास की कल्पना नहीं की जा सकती। मैंने इन बातों का उल्लेख यों किया है

क्योंकि ये उन्नति के चिह्न समझे जाते हैं। परन्तु इनसे सुख के एक कण की भी वृद्धि नहीं होती। यही बात वैलेस नामक महान् विज्ञानवेत्ता ने निश्चयात्मक रूप से कहा है।

"अतीत के जो सबसे पुराने रिकार्ड मिलते हैं उनसे यह बात साफ तौर से प्रामाणित है कि साधारण सदाचार, नैतिकता का धरातल और लोग के साधारण व्यवहार आज के लोगों से घट कर नहीं थे।"

उसके बाद उसने परिच्छेदों में अंग्रेज जाति ने जो धन की वृद्धि की है उसपर विचार किया है। वह कहता है "धन की द्रुतगति अभिवृद्धि और प्रकृति पर हमारी विजय के कारण हमारी मूलसभ्यता, हमारी ऊपरी इसाईपने पर अत्यधिक भार पड़ा है और साथ ही साथ तरह तरह की सामाजिक अनैतिकता की भी वृद्धि हुई है जो कम आश्चर्य जनक नहीं, वे अभूतपूर्व हैं।" आगे चल कर उसने बतलाया है कि किस तरह कारखाने नर नारियों और बच्चों की लाश पर खड़े हुए हैं और किस तरह ज्यों ज्यों धन की वृद्धि हुई है देश का नैतिक पतन होता गया है। अस्वास्थ्यकर वातावरण, जीवन नाशक व्यापार, व्यभिचार, घूसखोरी और घूत की बात को लेकर उसने इसे स्पष्ट कर दिखाया है। उसने दिखलाया है कि किस तरह धन की वृद्धि के साथ साथ न्याय अनैतिक होगया है, शराब और आत्म हत्या से मरने वालों की संख्या बढ गई है, असामयिक मृत्यु और जन्मजात शारीरिक दोप बढ गये हैं, और वेश्या गीरी ने तो एक संस्था का रूप लेलिया है। वह इन सार गर्भित बातों के साथ अपनी बातों को समाप्त करता है।

"तलाक की अदालतों की कारवाइयों से, धन और फुरसत से जो परिणाम होते हैं उनके दूसरे पहलू पर रोशनी पड़ती

है। एक मेरे मित्र हैं जिन्होंने लंदन के समाज को अच्छी तरह देखा है। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया है कि लंदन तथा ग्रामों में भी व्यभिचार के ऐसे नजारे प्रायः देखने में आते हैं जो भ्रष्ट से भ्रष्ट राजाओं के जमाने में भी शायद ही सुनने में आये हों। युद्धों के बारे में तो कुछ कहना ही नहीं। रोमन साम्राज्य के उत्थान के बाद यह एक तरह से सदा ही लगा रहा हैं, पर सब सभ्य मनुष्यों में युद्ध के प्रति अरुचि हो गई है। तो भी शान्ति के लिये पवित्र घोषणाओं के साथ साथ शस्त्रीकरण भी भयानक बोझ से तो यही कहना पड़ता है कि शासक वर्ग ने नतिकता के सिद्धान्त को तो तिलांजलि दे दी है।"

ब्रिटिश छत्र छाया में हमने बहुत कुछ सिखा है, पर मेरा विश्वास है विशुद्ध नैतिकता के बारे में हमें ब्रिटेन से कुछ नहीं सीखना है। यदि हम सावधान नहीं रहे तो हमारे अन्दर वे सब दुर्गुण घुस आयेंगे जिनका वह भौतिकता के कारण शिकार रहा है। इस संबन्ध से हमें तभी लाभ हो सकता है यदि हम अपनी सभ्यता और नैतिकता को चुस्त दुरस्त रखे। अर्थात् जाज्वल्यमान अतीत पर झूठा गर्व रखने के बदले अपने जीवन में उस गौरव का प्रदशन करें और हमारा जीवन ही उस हमारे गर्व का साक्षी हो। तभी ब्रिटेन का और हमारा भला होगा। परन्तु जब हमने उसका अन्धानुकरण किया क्योंकि वह शासक है तो दोनों का पतन है। हमें आदर्शों से और अधिक से अधिक उन्हें चरितार्थ करने से हिचकचाना नहीं चाहिये। हमारा राष्ट्र तभी सच्चा आध्यात्मिक राष्ट्र बन सकता है जब हम स्वर्ण से अधिक सत्य, शक्ति और धनके आडम्बर से अधिक निर्भीकता, स्वार्थ से अधिक उदारहृदयता दिखला सकेंगे। यदि हमने अपने घरों को साफ रखा, अपने प्रसादों और मन्दिरों को धन से पाक रखा तो सैनिकवाद के व्यर्थ के भार के वहन के

बिना भी अपने विरोधों, शत्रु संगठनों का सामना कर सकेंगे। हम प्रथम भगवान के राज्य और उनकी नैतिकता की खोज करें और……इसका अनिवार्य परिणाम हमारे कल्याण में ही होगा। यही सच्चा अर्थ शास्त्र है। हम और आप इसे निधि समझकर जीवन में इस पर अमल करें।

भारत और समाजवाद

पूंजीपतियों के द्वारा धन के गलत तरीके के प्रयोग के साथ ही समाजवाद का जन्म नहीं हुआ। जैसा मैंने कहा है कि समाजवाद की ही नहीं ईसोपनिषद के प्रथम श्लोक में साम्य वाद की चर्चा स्पष्ट रूप से है। सच्ची बात तो यह है कि जब कुछ सुधारकों का विश्वास हृदय परिवर्तन से उठ गया तब वैज्ञानिक समाजवाद की पद्धति का जन्म हुआ। मैं उसी समस्या को हल करने में लगा हूँ जो समाजवादियों के सामने है। हां यह बात सच है कि मेरा दृष्टिकोण सदा विशुद्ध अहिंसा का रहा है। होसकता है कि जिस सिद्धान्त में मेरा विश्वास उत्तरोत्तर बढता जा रहा है उसको मैं ठीक से समझा नहीं सकता होऊं। अखिल भारतीय चर्खा संघ, A. I. V. I. A. इत्यादि ऐसी संस्थायें हैं जिनके द्वारा भारतवर्षीय पैमाने पर अहिंसा की पद्धति कसौटी पर कसी जा रही है। कांग्रेस के द्वारा निर्मित वे विशिष्ट स्वतंत्र संस्थायें है ताकि उन बन्धनों के बिना जिनके अन्दर कांग्रेस जैसी प्रजातांत्रिक संस्था को नियंत्रित रहना पड़ता है मैं अपने प्रयोग जारी रख कूं।

हमारे पूर्वजों के द्वारा सच्चा समाजवाद उत्तराधिकार के रूप में मिला है जिन्होंने कहा है कि "सब भूमि गोपल की है तब उस पर सीमा क्या? सब सीमायें मनुष्य की बनाई हुई हैं अतः वह उन्हें मिटा भी सकता है।" गोपाल का शाब्दिक अर्थ पशुओं का पालन करने वाला है। इसका अर्थ ईश्वर भी है। आधुनिक भाषा में इसका अर्थ राज्य है अर्थात जनता। हां,

है। एक मेरे मित्र हैं जिन्होंने लंदन के समाज को अच्छी तरह देखा है। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया है कि लंदन तथा ग्रामों में भी व्यभिचार के ऐसे नजारे प्रायः देखने में आते हैं जो भ्रष्ट से भ्रष्ट राजाओं के जमाने में भी शायद ही सुनने में आये हों। युद्धों के बारे में तो कुछ कहना ही नहीं। रोमन साम्राज्य के उत्थान के बाद यह एक त ह से सदा ही लगा रहा हैं, पर सब सभ्य मनुष्यों में युद्ध के प्रति अरुचि हो गई है। तो भी शान्ति के लिये पवित्र घोषणाओं के साथ साथ शस्त्री करण भी भयानक बोझ से तो यही कहना पड़ता है कि शासक वर्ग ने नतिकता के सिद्धान्त को तो तिलांजलि दे दी है।"

ब्रिटिश छत्र छाया में हमने बहुत कुछ सिखा है, पर मेरा विश्वास है विशुद्ध नैतिकता के बारे में हमें ब्रिटेन से कुछ नहीं सीखना है। यदि हम सावधान नहीं रहे तो हमारे अन्दर वे सब दुर्गुण घुस आयेंगे जिनका वह भौतिकता के कारण शिकार रहा है। इस संबन्ध से हमें तभी लाभ हो सकता है यदि हम अपनी सभ्यता और नैतिकता को चुस्त दुरस्त रखे। अर्थात् जाज्वल्यमान अतीत पर झूठा गर्व रखने के बदले अपने जीवन में उस गौरव का प्रदशन करें और हमारा जीवन ही उस हमारे गर्व का साक्षी हो। तभी ब्रिटेन का और हमारा भला होगा। परन्तु जब हमने उसका अन्धानुकरण किया क्योंकि वह शासक है तो दोनों का पतन है। हमें आदर्शों से और अधिक से अधिक उन्हें चरितार्थ करने से हिचकचाना नहीं चाहिये। हमारा राष्ट्र तभी सच्चा आध्यात्मिक राष्ट्र बन सकता है जब हम स्वर्ण से अधिक सत्य, शक्ति और धनके आडम्बर से अधिक निर्भीकता, स्वार्थ से अधिक उदारहृदयता दिखला सकेंगे। यदि हमने अपने घरों को साफ रखा, अपने प्रसादों और मन्दिरों को धन से पाक रखा तो सैनिकवाद के व्यर्थ के भार के वहन के

असहयोग। कभी कभी असहयोग करना भी वैसा ही कर्त्तव्य हो जाता है जैसा कि सहयोग। अपना नाश करने तथा अपनी गुलामी के कायम रखने में सहयोग करना किसी के लिये लिये लाजिमी नहीं है। दूसरों के प्रयत्नों के फल स्वरूप प्राप्त स्वतंत्रता चाहे वे प्रयत्न कितनी ही सदाशयता पूर्ण क्यों न हो सुरक्षित नहीं रह सकती यदि वे प्रयत्न हटा लिये जायें। दूसरे शब्दों में ऐसी स्वतंत्रता सच्ची स्वतंत्रता नहीं। पर ज्योंही अहिंसात्मक असहयोग के द्वारा प्राप्त करने की कला मालूम हुई त्योंही छोटा से छोटा व्यक्ति भी इसका पुलक-स्पर्श का अनुभव करेगा। मेरा विश्वास है कि अहिंसात्मक असहयोग के द्वारा वह प्राप्त हो सकता है जो हिंसा के लिये संभव नहीं और यह भी बुराई करने वालों के हृदय परिवर्तन द्वारा। हम लोगों ने भारतवर्ष में अहिंसा को जैसा चाहिये वैसा काम करने का अवसर नहीं दिया है। आश्चर्य तो यह है कि अपनी मिश्रित अहिंसा के द्वारा भी हम इतना प्राप्त कर सके हैं।

अपने सभ्य जीवनयापन के लिये जितनी भूमि की आवश्यकता है उससे अधिक पर किसी को अधिकार नहीं रखना चाहिये। इस बात को कौन अस्वीकार कर सकता है कि जनता को पीस डालने वाली गरीबी का कारण यह है कि उनके पास अपनी कुछ भी जमीन नहीं। पर यह भी महसूस करना चाहिये कि यदि अहिंसात्मक उपायों के द्वारा प्राप्त करना है तो सुधार एकाएक नहीं किये जा सकते। यह धनिकों और गरीबों दोनों की शिक्षा से ही हो सकता है।

समाजवादी कौन है?

समाजवाद एक सुन्दर शब्द है और जहां तक मुझे मालूम है समाजवाद में सब सदस्य बराबर हैं, न कोई बड़ा न कोई

छोटा। मनुष्य के शरीर में सिर बड़ा नहीं गिना जाता क्योंकि वह शरीर के ऊपरी भाग पर है और न पैर के तलुवे छोटे क्योंकि वे पृथ्वी को छूते हैं। जिस तरह शरीर के प्रत्येक अवयव बराबर है उसी तरह समाजवाद के प्रत्येक सदस्य। यही समाजवाद है।

इसमें राजा और किसान, धनी और गरीब, मालिक और मजदूर सब बराबर हैं। धर्म के शब्दों में कह सकते हैं कि समाजवाद में द्वैतवाद नहीं। सर्वत्र अद्वैतवाद है। संसार के सब समाजों की ओर देखने से तो यही पता चलता है कि द्वैतवाद अथवा बहुवाद का ही बोलबाला है। अद्वैतता का तो स्पष्टतः अभाव है। यह मनुष्य ऊँचा है, यह नीचा है, यह हिन्दू, वह मुसलमान, यह ईसाई, वह पारसी, यह सिख और वह यहूदी। इनमें भी शाखायें प्रशाखायें हैं। मैंने जिस अद्वैतता की कल्पना की है वहां बाहरी बहुत्व रहते भी पूर्ण अद्वैतता है।

इस स्थिति को प्राप्त करने के लिये हमें चुपचाप दार्शनिक रूप में ही इस प्रश्न पर विचार कर नहीं कहना चाहिये कि जब तक सब के सब लोग समाज वाद में विश्वास करने वाले न हो जांय तब तक कुछ भी नहीं किया जाय। अपने जीवन में परिवर्तन लाये बिना हम लेक्चर भले ही देते जांय और एक बाग की तरह जब शिकार सामने आये हम उसे झपट लें पर यह समाजवाद नहीं। जितना ही हम समाजवाद को हड़प लेने वाले शिकार के रूप में देखेंगे उतना ही यह दूर हटता जायेगा।

समाजवाद का आरम्भ प्रथम व्यक्ति से ही हो जाता है। यदि कोई ऐसा व्यक्ति है तो जितना ही शून्य आप उस पर रखते जांय उसका मूल्य दस गुना होता जायेगा। पर जहां आरम्भ ही शून्य हो अर्थात कोई प्रारम्भ नहीं करता शून्य की

संख्या से शून्य ही उत्पन्न होगा। शून्यों के लिखने में कागज और समय का जो व्यर्थ होगा वह व्यर्थ की बराबरी होगी।

समाजवाद स्फटिक की तरह स्वच्छ है। अतः इसके प्राप्त करने के लिये भी स्फटिक की तरह स्वच्छ साधनों की आवश्यकता है। अपवित्र साधनों से अपवित्र ध्येय ही प्राप्त किये जा सकते हैं। अतः राजाओं के सर काट लेने से ही राजा और किसान बराबर नहीं हो जायेंगे और न इस सिर कटाई से मालिक और मजदूर ही एक हो सकते हैं। असत्य के द्वारा सत्य तक नहीं पहुँचा जा सकता। सत्य व्यवहार से ही सत्य तक पहुँचा जा सकता है। क्या सत्य और अहिंसा जुड़वें बालक नहीं ? उत्तर है नहीं। सत्य में अहिंसा निहित है और अहिंसा में सत्य। अतएव कहा गया है कि वे सिक्के के दो पृष्ट है। एक दूसरे से अभिभाज्य हैं। सिक्के को दो ओर से पढ़िये। शब्दों का विवरण भिन्न होगा पर कीमत एक ही। यह शुभ स्थिति बिना पूर्ण पवित्रता के प्राप्त नहीं हो सकती। जहां आपका मन तथा शरीर अपवित्र हुआ असत्य और हिंसा ने डेरा जमाया।

अतः सत्यवादी; अहिंसक और शुद्ध-हृदय समाजवादी ही भारत तथा विश्व में समाजवादी समाज की स्थापना कर सकते हैं। मेरे जानते संसार में कोई भी ऐसा देश नहीं जो शुद्ध रूप में समाजवादी हो। ऊपर बताये गये साधनों के प्रयोग के अभाव इस तरह के समाज का अस्तित्व असम्भव है।

साम्यवाद (Communism)

रूस की तरह का साम्यवाद अर्थात उस तरह का साम्यवाद जो लोगों पर ऊपर से लादा जाता है भारत के लिये अरुचिकर होगा। यदि हिंसा के बिना साम्यवाद की स्थापना होती है तो उसका स्वागत है क्योंकि वैसी हालत में जनता की थाती के रूप

में तथा जनता के हितके सिवा और किसी रूप में कोई सम्पति का अधिकारी नहीं होगा। एक लखपति के पास लाखों की सम्पति हो पर वह जनता के हितके लिये उसके पास होगी। जब कभी सार्वजनिक हित की आवश्यकता के लिये उसकी आवश्यकता होगी राज्य उसे ले लेगा।

आखिर साम्यवाद का अर्थ ही क्या ? इसका अर्थ वर्ग हीन समाज है। बेशक यह एक ऐसा आदर्श है जिसके लिये प्रयत्न करना चाहिये। मेरा असहयोग इसके साथ तभी हो जाता है जब इसकी प्राप्ति के लिये बल प्रयोग का सहारा लिया जाता है। जन्म से हम सब बराबर हैं पर इन शताब्दियों में हम ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध काम करते रहे हैं। असमानता के उच्च नीच के भाव बुरे हैं पर मनुष्य के हृदय मे तलवार की नोंक से इन्हें निकालने में मेरा विश्वास नहीं। ऐसे साधन मनुष्य के हृदय को छू नहीं सकते।

अधिकार या कर्तव्य

मैं एक बड़ी बुराई के बारे में कुछ कहना चाहता हूँ जो समाज पर आज हावी हो रही है। पूंजीपति और जमीन्दार अपने अधिकारों की बातें करते हैं, दूसरी तरफ मजदूर अपने अधिकारों की, राजा लोग राज्य करने के दैवी अधिकार की बातें और प्रजागण इसके विरोध करने की बातें करते हैं। यदि सब हक पर ही जोर दें और कर्तव्य पर नहीं तब चारों ओर अशान्ति और अव्यवस्था ही छा जायेगी।

पर अधिकारों पर जोर देने के बदले प्रत्येक अपने कर्तव्य पालन में लग जाय तो मानव जाति में शीघ्र ही शान्ति की स्थापना हो जाय। राजाओं का राज्य करने के दैवी अधिकार जैसी चीज और प्रजा को अपने स्वामी के विनय पूर्ण आज्ञा पालन जैसी चीज का नियम नहीं। हालांकि सामाजिक हित के लिये परम्परा प्राप्त इन असमानताओं को हानिकर समझकर इनका दूर किया जाना ही श्रेयस्कर है, पर आज तक के असंख्य पददलितों के अधिकारों का अनियंत्रित बुलन्दी करण अधिक नहीं तो उतना ही हानिकर है। इससे तो मुट्ठी भर दैवी अधिकार का दावा करने वालों को नहीं बल्कि इन लाखों की ही हानि की संभावना है। वे कायरतापूर्वक या वीरतापूर्वक मर सकते हैं पर इन मुट्ठी भर व्यक्तियों के द्वारा तो संतोषमय तथा शान्ति मय व्यवस्था की स्थापना नहीं हो सकती। अतः अधिकार और कर्तव्यों के पारस्परिक सम्बन्ध को समझना अत्यावश्यक है। मेरी तो दृढराय यह है जो अधिकार कर्तव्य पालन के परिणाम

स्वरूप प्राप्त नहीं होता उसे लेना चाहिये ही नहीं। यह तो एक तरह की हड़प है जिसका परित्याग जितना ही शीघ्र हो उतना ही अच्छा। वे माता-पिता जो अपने पुत्रों के प्रति कर्तव्य के पालन किये बिना ही चाहते हैं कि वे उनकी आज्ञा पालन करें, केवल घृणा के ही भाजन होते हैं। एक व्यभिचारी पति के लिये अपनी पत्नि से ही तरह अनुकूलता की आशा करना धार्मिक सिद्धान्तों का विद्रूप करना है। परन्तु एक कर्तव्यपरायण पिता की अवहेलना करने वाले पुत्र अकृतज्ञ हैं और अपने माता-पिता से अधिक अपनी ही हानि करते हैं। वही बात पति और पत्नि के बारे में भी कही जा सकती है। यदि आप इस सीधे और सार्वभौमिक नियम का प्रयोग मालिक और मजदूर, जमीदार और काश्तकार, राजा और उनकी प्रजा, अथवा हिन्दू और मुसलमान के पारस्परिक सम्बन्ध में करें तो आप देखेंगे कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यवस्थित जीवन तथा व्यापार के स्वाभाविक क्रम में किसी प्रकार प्रकार की गड़बड़ी भी न होगी जैसा आज भारत तथा अन्य देशों में पाया जाता है। सुखमय सम्बंध की स्थापना हो सकती है। जिसे मैं सत्याग्रह का नियम कहता हूँ वह कर्तव्यपारायणता और उसके परिणाम स्वरूप प्राप्त अधिकारों का उचित संतुलन ही है।

हिन्दू का अपने पड़ोसी मुसलमान भाई के प्रति कर्तव्य क्या है? उसका कर्तव्य है मनुष्य के नाते उससे बन्धुत्व की स्थापना करना, उसके सुख दुख में शामिल होना तथा आपत्ति काल में सहायता देना। तब उसे उसी तरह के व्यवहार अपने पड़ोसी मुसलमान भाई से प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त होगा और शायद उसकी आशा पूरी भी होगी। कल्पना कीजिये कि ऐसा गांव है जिसमें मुसलमानों की संख्या अत्यधिक है और

बीच बीच में नाम मात्र के इक्के दुक्के मुसलमान पड़े हैं तो वहां अधिक संख्यक जाति का अपने थोड़े से मुसलमान पड़ोसियों के प्रति कर्त्तव्य बहुत बढ जाता है। यहां तक कि वे यह न महसूस कर सकें कि मजहब की विभिन्नता के कारण ही उनके प्रति हिन्दुओं के व्यवहार में भी विभिन्नता आगई है। तब ही, इसके पूर्व नहीं, हिन्दुओं को हक हासिल होगा कि मुसलमान उनके स्वाभाविक दोस्त बने और तभी खतरे के समय में दोनों जातियां एक होकर काम कर सकेंगी। पर इतने पर भी थोड़ी संख्या वाले मुसलमान अधिक संख्यक हिन्दुओं के इस सद्व्यवहार के समुचित प्रतिदान न करें और प्रत्येक बात में झगड़ने की ही स्पिरिट रखे तो यह मनुष्यहीनता होगी। ऐसी सूरत में हिन्दुओं का कर्त्तव्य क्या होगा? अधिक संख्या की पाशविक शक्ति के बल पर उन्हें शिकस्त देना नहीं; यह बिना कमाये हुए हक को हड़प कर लेना होगा। उनका कर्त्तव्य होगा कि वे उनके इस अमानुषी व्यवहार को ठीक उसी तरह रोके जिस तरह आप अपने भाई को रोकते हैं। अधिक उदाहरण देना व्यर्थ है। मैं यह कह कर समाप्त कर दूंगा कि यदि दूसरी तरफ से गलती हो तो भी उपचार वही होगा। ऊपर जो कुछ मैंने कहा है उससे स्पष्ट है कि इस नियम का प्रयोग सफलता के साथ आज की प्रत्येक समस्या के लिये किया जा सकता है। जो समस्या आज इतनी विकट यों हो गई है कि प्रत्येक यहां वैसे अधिकारों का प्रयोग करना चाहता है जो किसी पूर्व कर्त्तव्य के बल पर अर्जित नहीं है।

यही नियम राजाओं और उनकी रैयत पर भी लागू होता है। राजाओं का कर्त्तव्य है प्रजा का सच्चा सेवक बनना। वे किसी बाहरी शक्ति के बल पर प्राप्त अधिकार से राज्य नहीं कर सकेंगे। तलवार के बल पर प्राप्त अधिकार से तो कभी

नहीं। वे सेवा तथा बुद्धिमत्ता के बल पर ही राज्य कर सकेंगे। तभी वे स्वेच्छा से दिये गये टैक्स और सेवाओं के अधिकारी हो सकेंगे। यदि वे इस सहज और महत्त्वपूर्ण सेवा से चूकते हैं तब प्रजा का उनके प्रति कोई कर्त्तव्यता नहीं बल्कि उनका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि राजा के इस हड़प का मुकाबला करें। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि प्रजा को इस अनुचित हड़प और अन्याय पूर्ण शासन व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करने का स्वाभाविक अधिकार हासिल हो जाता है। पर कर्तव्य के नाते यह विरोध पाप होगा यदि हत्या, लूट और मारकाट का रूप धारण करे। कर्तव्यपरायणता से जो शक्ति पैदा होती है वह अहिंसात्मक है, अविजेय है। सत्याग्रह ही उसे वजूद में लाता है।

—:*:—

जमीन के जोतने वाले

यदि भारतीय समाज को शान्ति के मार्ग से वास्तविक उन्नति की ओर अग्रसर होना है तो पैसे वाले व्यक्तियों को समझ लेना चाहिये कि रैय्यतों में भी वही आत्मा है जो उनमें है और धन मात्र के कारण गरीबों के मुकाबले में उन्हें उत्तम पद का भागीदार नहीं समझा जा सकता। उन्हें जापान के धनिकों की तरह सोचना चाहिये वे अपने रैय्यत रूपी नाबालिग़ के लिये धन केवल थाती के रूप में संचित करने के फल स्वरूप उसके संरक्षक हैं। तब अपने परिश्रम के लिये उचित कमीशन से ज्यादा नहीं ले सकते। धनिकों के व्यर्थ के वाह्या-डम्बर तथा तड़क भड़क और रैय्यतों के निरानन्द वातावरण और पीस डालने वाली गरीबी के बीच आकाश-पाताल का अन्तर है। एक आदर्श जमींदार वह है जो रैय्यत के बोझ को हल्का करे, उनके सीधे सम्पर्क में आकर उनकी जरूरतों की जानकारी प्राप्त करे और जीवन के आनन्द को खा जाने वाली निराशा के बदले उनमें आशा का संचार करे। स्वास्थ्य के नियमों का अज्ञान जो रैय्यतों में फैला है उससे उसे असन्तोष होगा, वह अपने को गरीबी की हालत में रखना स्वीकार करेगा ताकि रैय्यतों के जीवन की आवश्यकतायें पूरी हो सकें। वह अपने रैय्यतों की आवश्यकताओं का अध्ययन करेगा और ऐसे स्कूलों की स्थापना करेगा जहां उसके बच्चों के साथ साथ रैय्यतों के बच्चे भी शिक्षा प्राप्त करेंगे। वह गांव के कूओं और तालाबों की सफाई करेगा। वह स्वयं इसे करके रैय्यतों को

सड़कें और पखाना साफ रखने की शिक्षा देगा। उसके बगीचे पूर्ण रूप से रैय्यतों के लिये खुले रहेंगे। बहुत से मकानात जो व्यर्थ में उसके पास में केवल आनन्दोपभोग के लिये हैं उनमें वह अस्पताल, स्कूल वगैरह बनायेगा। यदि पूंजीपति समय के चिह्नों को पढ़ सकें, ईश्वर प्रदत्त अधिकार के भाव को बदल सकें, तो एक अविश्वासनीय थोड़े अर्से में ही गांव कहे जाने वाले ७० लाख करकट के ढेर शान्ति, स्वास्थ्य और सुख के निवास स्थान बन जांय। मेरा विश्वास है कि पूंजीपति यदि जापान के समुराह का अनुकरण करें तो उसे लाभ ही लाभ है हानि कुछ भी नहीं। पूंजीपतियों के सामने एक राह है। या तो वे स्वेच्छापूर्वक व्यर्थ के बाह्याडंबरों का परित्याग करदें और परिणाम स्वरूप सबके लिये सुख-शान्ति अर्जित करें। यदि समय रहते पूंजीपति नहीं जगे तो जागृत पर अज्ञान और भूखी जनता की हुँकार के कारण सारे देश में अशान्ति का वातावरण उपस्थित हो जायगा और सरकार की सैनिक शक्ति भी उसे रोकने में असमर्थ रहेगी। मेरी आशा है कि भारत सफलता पूर्वक इस खतरे से अपनी रक्षा करेगा।

किसानों के अधिकार

मुझे इसमें शक नहीं यदि प्रजातंत्रिक स्वराज्य की प्राप्ति हो गई और यदि अहिंसात्मक उपायों के द्वारा इसे मिलना है तो वह अवश्यंभावी है। तो किसानों के हाथों में सब तरह की ताकत रहेगी यहां तक कि राजनैतिक शक्ति भी।

यदि स्वराज्य पूरे राष्ट्र क प्रयत्नों के फलस्वरूप प्राप्त होगा जैसा कि अहिंसात्मक उपायों के द्वारा होगा ही, तो किसानों को अपना सच्चा स्थान प्राप्त होगा और उन्हीं का बोलबाला

रहेगा। पर यदि ऐसा नहीं हो सका और सीमित मताधिकार के बल पर सरकार और जनता में एक काम चलाऊ समझौता होगया तो खेतों के जोतने वालों के स्वार्थों की निगरानी की आवश्यकता होगी। यदि व्यवस्थापिका सभायें किसानों के स्वार्थ की रक्षा करने में असमर्थ है तो उन्हें भद्र अवज्ञा और असहयोग का अमोघ अस्त्र तो प्राप्त है ही। पर आखिर में कागजी कानून, लम्बी चौड़ी बातें या जोशीली वक्तायें अन्याय या अत्याचार से रक्षा नहीं करती पर यह रक्षा करने वाली सच्ची चीज है अहिंसात्मक संगठन, अनुशासन और त्याग।

मजदूरों के अधिकार और कर्त्तव्य

मेरे हृदय में मजदूरों के लिये इतनी श्रद्धा है, कि मैंने अपने भाग्य को उनके साथ सम्बद्ध कर दिया है और बहुत बहुत दिनों तक मैं उनके बीच में रहा हूँ, और उन्हीं की तरह अपने हाथों और पैरों से परिश्रम किया है। शारीरिक परिश्रम करना केवल अपनी स्थिति के नियमों का पालन करना है और ऐसी सूरत में किसी को अपने भाग्य से असंतुष्ट रहने का कुछ भी कारण नहीं है। बल्कि मैं तो यहां तक कहूँगा कि आप अपने को उस राष्ट्र के लिये साझीदार समझें जिसके लिये आप परिश्रम कर रहे हैं। राष्ट्र का काम करोड़पतियों और पूंजीपतियों के बिना चल सकता है पर मजदूरों के अभाव में उनका काम नहीं चल सकता।

मेरा यह सार्वभौमिक अनुभव है कि मजदूरगण अपने उत्तरदायित्व को अधिक ईमानदारी से पूरा करते हैं बनिस्पत मालिकों से जिनका मजदूरों के प्रति भी कर्तव्य है। अतः मजदूरों के लिये आवश्यक हो जाता है कि वे इस बात का पता लगावें कि वे कहां तक मालिकों को अपनी इच्छा की पूर्ति के लिये बाध्य कर सकते हैं। यदि हमें समुचित वेतन या रहने का घर नहीं मिलता तो पूरी मजदूरी और रहने की जगह पाने का उपाय क्या है? मजदूरों की सुख और सुविधाओं का माप दण्ड कौन स्थिर करे? निःसन्देह सर्वोत्तम उपाय तो यही है मजदूर लोग अपने अधिकारों को समझें, अपने अधिकारों को क्रिया-

त्मक रूप देने के उपायों को जानें और उसका प्रयोग करें। पर इसके लिये थोड़ी शिक्षा की आवश्यकता पड़ेगी।

इस समस्या को सुलझाने में जो मजदूरगण योग दान कर सकते हैं वह यह है कि वे अपनी स्थिति को सुधारें, ज्यादा ज्ञान पैदा करें, अपने अधिकारों का दावा करें, यहां तक वे दावा कर कि जिन चीजों के उत्पादन में उनका महत्वपूर्ण हाथ है उनक उचित प्रयोग हो इस बात की देख रेख करने का भी उन्हें अधिकार हो। अतः उचित क्रमिक विकास तो यह होगा कि मजदूर-गण अपने को कुछ अंशों में मालिकों व प्रबन्धकों की स्थिति तक ऊंचा उठायें।

प्रश्न हमारे सबके सामने यह है जब कि मजदूरों में उसी अवस्था में जिस अवस्था में वे हैं कुछ चैतन्य का संचार हो तो उन्हें क्या करना चाहिये? यह आत्मघातक होगा कि यदि मजदूर-गण अपनी संख्या अथवा पाशविक शक्ति अर्थात् हिंसा पर ही निर्भर करें। ऐसा करने से वे देश के उद्योगों को हानि पहुंचायेंगे। पर यदि वे न्याय का आश्रय लें और उसे प्राप्त करने के लिये स्वयं कष्ट सहें तो इसका परिणाम इतना ही नहीं होगा कि वे स्वयं सफल होंगे पर इससे उनके मालिकों का भी सुधार होगा, उद्योगों का विकास होगा और मालिक और मजदूर दोनों एक ही परिवार के सदस्य बने रहेंगे।

पूंजीपतियों और मजदूरों में स्वार्थ का संघर्ष है अवश्य पर हम अपने कर्त्तव्यपालन के द्वारा उसे हल कर सकते हैं। जैसे शुद्ध रक्त पर रोग के कीटाणुओं का कुछ भी असर नहीं होता उसी तरह शुद्ध मजदूरी का शोषण भी असंभव हो जायगा। मजदूरों को जानना चाहिये कि परिश्रम भी पूंजी है। जब मजदूरों को उचित शिक्षा मिलेगी, वे संगठित होंगे और अपनी

शक्ति को महसूस करेंगे तो कोई भी उन्हें दबा नहीं सकता। शिक्षित और संगठित मजदूर अपनी शर्तें मनवा सकते हैं। चूंकि हम कमजोर हैं अतः किसी दल से बदला लेने की कसमें खाने से मतलब नहीं निकलता। हमें शक्ति का संचय करना होगा। वीर हृदय, सुलझा मस्तिष्क और काम की इच्छा करने वाली भुजाएं सारी अड़चनों और कठिनाइयों को दूर कर देंगी।

हड़तालें

हड़तालें रोज मर्रे की बात होगई हैं। मौजूदा असन्तोष के वे चिह्न हैं। वातावरण में हर तरह के विचार तैर रहेहैं। एक अस्पष्ट सी आशा सब को अनुप्राणित कर रही है और यदि उस आशा ने कोई निश्चित रूप धारणा नहीं किया तो एक गहरी निराशा छा जायेगी। भारत के मजदूर और देशों की तरह ही उन लोगों पर आश्रित हैं जो उनके सलाहकार और रहबर होने का दम भरते हैं जो सदा ईमानदार ही नहीं होते। और ईमानदार हुए भी तो सदा बुद्धिमान नहीं होते। मजदूरों को अपनी दशा से सन्तोष नहीं है। असन्तोष के बहुत से कारण हैं। उन्हें सिखाया जा रहा है और यह ठीक भी है। वे समझें कि अपने मालिकों को समृद्ध बनाने के मुख्य साधन वे ही हैं। अतः उनके लिये हथियार डाल देना सहज काम है। राजनीतिक परिस्थिति भी भारत के मजदूरों को प्रभावित कर रही है। और ऐसे मजदूर नेताओं की कमी नहीं है जो यह सोचते हैं कि राजनैतिक उद्देश्यों के लिये हड़तालें कराई जा सकती हैं।

मेरी सम्मति में कि मजदूरों की हड़तालों को ऐसे उद्देशों का साधन बनाना महान् भूल होगी। मैं यह नहीं कहता कि

ऐसे हड़तालों से राजनैतिक उद्देश्य सफल नहीं होसकते। पर वे अहिंसात्मक असहयोग की परिधि में नहीं आते। इस बात को समझने के लिये अधिक बुद्धि की आवश्यकता नहीं कि मजदूरों को राजनतिक उद्देश्यों का साधन बनाना तब तक बहुत ही खतरनाक-बात होगी जब तक मजदूर देश की राजनैतिक परिस्थिति समझने योग्य न हों और एक सार्वजनिक हित के लिये काम करने को प्रस्तुत न हों। पर इस बात की आशा उनसे एकाएक नहीं की जा सकती जब तक वे अपनी दशा को सुधार कर सभ्य तरीके से जीवन यापन करने लायक अपने को न बनालें।

अतः फिलहाल तो हड़ताल मजदूरों की दशा के सुधार के लिये ही होनी चाहिये और जब उनमें देश भक्ति के भाव जागृत हो जांय तो चीजों की कीमत पर नियंत्रण करने के लिये भी।

सफल हड़ताल की शर्तें सीधी हैं और वे जब पूरी होती हैं तो हड़ताल को असफल होने का डर नहीं।

(१) हड़ताल का कारण न्याय पूर्ण हो।

(२) हड़तालियों में व्यावहारिक मतैक्य हो।

(३) जो हड़ताल नहीं करते उनके विरुद्ध हिंसा का प्रयोग न हो।

(४) हड़ताल की अवधि में हड़ताली बिना यूनियन फण्ड की सहायता के अपने भरण-पोषण में समर्थ हों। अतः उन्हें कोई अस्थायी उत्पादक काम में लग जाना चाहिये।

(५) जब काफी तादाद में दूसरे मजदूर काम करने के लिये तैयार हैं तो हड़ताल से कुछ काम नहीं निकलने का। ऐसी

सूरत में बुरे बर्ताव व कम मजदूरी पाने वगैरह पर इस्तीफा ही दे देना चाहिये।

उद्योगीकरण का अभिशाप

आखिर पश्चिमीय अर्थों में भारत का उद्योगीकरण ही क्यों हो? पश्चिमी सभ्यता नागरिक सभ्यता है। इंगलड या इटली जैसे छोटे २ देश अपने को उद्योगीकरण कर सकते हैं.........अमेरिका जैसा बड़ा देश जिसकी जन संख्या थोड़ी है, कर सकता है। पर हमें सोचना चाहिये कि एक बड़ा देश जिसकी जन संख्या बड़ी हो, जिसे एक ग्रामीण सभ्यता परम्परा से प्राप्त हो जिससे उसकी समस्या हल होती रही हो उसे पश्चिमी आदर्श का अन्धानुकरण नहीं करना चाहिये। एक विशिष्ठ परिस्थिति में रहने वाले राष्ट्र के लिये जो बात उपयोगी हो सकती है वह भिन्न-परिस्थिति में रहने वाले राष्ट्र के लिये उपयोगी हो यह कोई जरूरी नहीं। एक के लिये बैरी दूसरे के लिये पथ्य भी हो सकता है। मशीनीकरण तब अच्छा हो सकता है जब काम करने वालों की संख्या थोड़ी हो। पर यह बुराई है जब काम करने वालों की संख्या ज्यादा है जैसा कि भारतवर्ष में है। हमारे सामने प्रश्न यह नहीं है कि हम अपने देश के असंख्य ग्राम-वासियों को फुरसत कैसे दे सकें। प्रश्न यह है कि उनके बेकारी के समय को वर्ष में छः महीने के करीब है किस तरह काम में लाया जाय।

मृत मशीनों को ७ लाख भारत में बसने वाले जीवित मशीनों के मुकाबले में नहीं खड़ा करना चाहिये। मशीनों का सदुपयोग इसमें है कि मनुष्य के प्रयत्नों में थोड़ी सहायता करदें। आज

कल मशीनों के प्रयोगों का परिणाम यह होता है कि कुछ लोगों की मुट्ठियों में धन केन्द्रित होता जा रहा है और असंख्य नर नारियों की रोटी छीनी जा रही है और उनका तिरस्कार होता है।

राजे महाराजे

मेरी कल्पना में भारतीय रियासतों का आदर्श रामराज्य है। एक धोबी की टीका-टिप्पणी से राम ने हवा का रुख पहचाना और अपनी प्रजा को सन्तुष्ट करने के लिये सीता का परित्याग कर दिया था जो उन्हें प्राणों की तरह प्यारी थी और धर्म की मूर्ति थी। राम एक कुत्ते के साथ भी न्याय करते थे। सत्य के रक्षार्थ राज्य का परित्याग कर तथा बनवास स्वीकार कर संसार के सारे राजाओं के सामने उन्होंने सदाचरण का आदर्श रखा है। एक पत्नीव्रत का पर्ण पालन कर उन्होंने बतलाया है कि राज्य परिवार को गृहस्थों को संयमित जीवन व्यतीत करना चाहिये। अपने लोक प्रिय शासन के द्वारा उन्होंने अपने सिंहासन को गौरवान्वित किया और प्रमाणित किया कि रामराज्य स्वराज्य का सर्वोतम रूप है।

ऐसा रामराज्य आज भी सम्भव है। राम के वंशज अभी समाप्त नहीं हुए हैं। आधुनिक काल में प्रथम खलीफाओं के बारे में कहा जा सकता है कि उन्होंने रामराज्य की स्थापना की थी। अबुबकर और हजरत उमर करोड़ों की मालगुजारी उगाहते थे पर व्यक्तिगत रूप में उनका जीवन फकीरों का था। वे शाही खजाने से एक भी पैसा नहीं लेते थे। लोगों के साथ न्याय हो इसके लिये वे सदा जागरुक रहते थे। यह उनका सिद्धान्त था कि शत्रु के साथ भी दगा नहीं करना चाहिये, उसके साथ न्याय पर्ण व्यवहार होना चाहिये।

'यथा राजा तथा प्रजा' वाली लोकोक्ति में सत्यता है पर आधी ही अर्थात ठीक इसके विपरीत 'यथा प्रजा तथा राजा' से यह अधिक सत्य नहीं है। जहां प्रजा सतर्क है वहां अपनी प्रतिष्ठा के लिये राजा को उन्हीं पर निर्भर रहना पड़ता है। जहां प्रजा उदासीनता की नींद लेने लगती है वहां प्रत्येक सम्भावना है कि राजा संरक्षक न रह कर अत्याचारी हो जायेंगे।

मुझे मालूम है कि भारत में एक ऐसे लोगों का दल बढ रहा है जिनका विश्वास है कि राजा लोग सुधारातीत हैं और जब तक पैशाचिक अतीत के इस भग्नावशेष का नाश नहीं होता भारत स्वतंत्र हो नहीं सकता। मैं ईमानदारी पूर्वक उनसे सहमत नहीं और अहिंसा तथा मानव स्वभाव की उच्चता में विश्वास रखने के कारण दूसरा कर भी नहीं सकता। भा॰त में उनका भी स्थान है। अतीत की सब परम्परा को हटा देना सम्भव नहीं। अतः मेरा ख्याल है कि यदि राजा लोग अतीत से शिक्षा ग्रहण करें और समय का साथ दें तो सारी बातें ठीक हो जायेंगी। समस्या के साथ केवल टीप टाप कर देने से काम नहीं चलेगा। उन्हें साहस पूर्वक कदम उठाने होंगे। उन्हें प्रजा के हाथों सच्ची और महत्वपूर्ण शक्ति को सौंपना होगा। जहां तक मुझे मालूम है परिस्थिति की रक्षा के लिये और भारत को भयानक खूंरेज युद्ध से बचाने के लिये कोई दूसरा बीच का उपाय नहीं।

हिन्दू राज्यों और मुस्लिम राज्यों की बात करने के दिन लद गये। इसकी कसौटी भी क्या है? क्या काश्मीर जहां के निवासी अत्यधिक जन संख्या में मुसलमान हैं हिन्दू राज्य होगा क्योंकि वहां एक हिन्दू राजा राज्य करता है। अथवा हैदराबाद जहां

हिन्दू अधिक संख्या में हैं मुस्लिम राज्य होगा क्योंकि वहां एक मुसलमान राजा राज्य करता है। मैं ऐसी बात को राष्ट्रीयता का कलंक समझता हूँ। क्या भारत एक क्रिश्चियन राज्य कहा जायेगा क्योंकि एक क्रिश्चियन मतावलम्बी शासक इस पर राज्य करता है। पर यदि भारत भारतीय है चाहे कोई उस पर शासन करे तो स्टेट भी भारतीय है राजा चाहे कोई हो और आज राजा और उनके उत्तराधिकारी जागरूक प्रजागण की कृपा से ही राज्य कर सकेंगे। जागृति अब स्थायी हो गई है। रोज रोज इसकी रफ्तार बढती ही जाती है। राजा और उनके मंत्रीगण प्रजा की जागृति को दबाने में फिलहाल सफल भी हो जा सकते हैं पर वे उसे सदा के लिये नष्ट नहीं कर सकते। इसमें सफलता का अर्थ है भारत की आत्मा को कुचलना। क्या इस बात की कल्पना भी की जा सकती है कि जागृत भारत एक क्षण के लिये भी इस अत्याचार को सहन कर सकेगा चाहे वह किसी भी स्थान में हो अथवा छोटे या बड़े पैमाने पर हो।

कभी कभी अंग्रेजों ने किसी राजा को कुशासन के लिये कड़ी सजा दी है पर अधिकांश राजाओं ने एशो-आराम की जिन्दगी बिताई है और अपनी प्रजा का शोषण किया है। अब वह साम्राज्यवादी शक्ति जा रही है और राजा लोगों के लिये इसका स्वागत करना स्वाभाविक है क्योंकि उनके सरसे सर्वोपरि शक्ति के दबाव का भार हट रहा है। पर वे प्रजा की सर्व सत्ता को अस्वीकार करने की मूर्खता कर सकते हैं। उन्हें प्रजा की सर्वोपरि शक्तिमत्ता को इनायत समझ कर उसका सम्मान करना चाहिये। इससे उनका नैतिक बल बढ़ेगा और उनके गौरव की वृद्धि होगी। पर इसका अर्थ यह है कि उन्हें अपनी प्रजा का प्रथम सच्चा सेवक सही मानों में होना पड़ेगा। उन्हें अपने

व्यवहार द्वारा इस सेवा भाव का प्रदर्शन करना होगा। उन्हें प्रजा मण्डल या लोगों के सच्चे नेता की सलाह से काम करना होगा। यह चतुरता होगी और तभी जनता शेष भारत के साथ स्वतंत्रता के पुलक स्पर्श का अनुभव कर सकेगी।
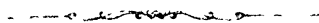
अल्प जनमत की समस्या

मुझे इसमें जरा भी मत भेद नहीं कि साम्प्रदायिक मतभेद का बर्फीला पहाड़ स्वतंत्रता सूर्य की गर्मी से पिघल जायेगा।

अल्प मत की समस्या के हल के बिना भारत के लिये स्वराज्य एवं स्वतंत्रता की स्थापना नहीं हो सकती। परन्तु एक न एक दिन अल्प मत की समस्या का वास्तविक तथा जीवित हल निकाल सकूंगा इससे मैं निराश नहीं हो गया हूँ। मैंने अन्य अवसरों पर जो बात कही है उसे दुहराऊंगा कि जब तक भारत में एक सम्प्रदाय को दूसरे से, एक वर्ग को दूसरे से पृथक कर रखने वाला विदेशी शासन रूपी कील मौजूद है तब तक दूसरा कोई हल नहीं मिल सकता, सम्प्रदायों में जीवित मैत्री का सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता। पर ज्योंही वह कील दूर हुआ तब क्या आप समझते हैं कि घरेलू सम्बन्ध, घरेलू, स्नेह-भाव तथा आनुवंशिकता भाव इत्यादि का कुछ भी असर नहीं होगा। जब यह यहां ब्रिटिश शासन नहीं था, जब कोई अंग्रेजी सूरत नहीं दिखलाई पड़ती थी तो क्या हिन्दू, मुसलमान और सिख सदा लड़ते ही रहते थे? हिन्दू और मुसलमान इतिहास लेखकों ने ऐसी पुस्तकें और कवितायें लिखी हैं जिससे पता चलता है कि वे शान्ति-पूर्वक रहा करते थे। आज भी देहातों में हिन्दू और मुसलमान नहीं झगड़ते। उन दिनों लड़ाई का पता भी नहीं था। यह लड़ाई बहुत पुरानी नहीं है। मैं साहस पूर्वक कह सकता हूँ कि इसका आरम्भ अंग्रेजों

के आगमन के साथ हुआ है और ज्योंहीं यह भारत और ब्रिटेन के बीच का दुर्भाग्य पर्ण और कृत्रिम सम्बन्ध ने एक स्वाभाविक सम्बन्ध का रूप लिया, जब इनसे एक ऐसे ऐच्छिक सम्बन्ध का रूप लिया, जो किसी भी पार्टी की इच्छा से तोड़ा जा सकता है तब आप पायेंगे कि हिन्दू, मुसलमान, सिख, यूरोपियन, आंग्लो-इण्डियन, क्रिश्चियन और अछूत सब आपस में एक भाई की तरह रहने लगेंगे। स्वतंत्र भारत साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का कभी भी गवारा नहीं कर सकता पर फिर भी यदि स्वतंत्रता का राज्य अल्प-मत के दबाव पर नहीं खड़ा है तो सब सम्प्रदाय के लोग खुश रहेंगे।

नौकरियों का बंटवारा सम्प्रदाय की जनसंख्या के अनुपात से नहीं होना चाहिये। हां, राष्ट्रीय सरकार के द्वारा शिक्षा में पिछड़ी जातियों को कुछ सुविधायें प्राप्त करने का हक होगा। पर देश के शासन में उत्तरदायित्व की नौकरियों को पाने की जो इच्छा रखते हैं उन्हें निर्धारित परीक्षा पास करनी ही पड़ेगी।

'बहुमत का राज्य'

बहुमत शासन के नियम के प्रयोग की सीमा छोटी है अर्थात् विस्तार की छोटी मोटी बातों में बहुमत के सामने झुकना चाहिये। पर बहुमत के सामने झुकना चाहे उसका निर्णय कुछ भी हो गुलामी है। प्रजातंत्र का राज्य वैसा नहीं है जहां लोग भेड़ों की तरह व्यवहार करते हैं। प्रजातंत्र राज्य में व्यक्ति के मत स्वातंत्र्य और कार्य स्वातंत्र्य की रक्षा पूरी तत्परता से की जाती है। अतः मेरा विश्वास है कि अल्प मत को बहुमत से भिन्न कार्य करने का पूरा अधिकार है।

जैसा हम अपने लिये मत-स्वातंत्र्य और कार्य-स्वातंत्र्य का

दावा करते हैं उसे दूसरों के लिये भी देना चाहिये। बहुमत का शासन जब जोर और जबरदस्ती पर कायम होता है तब वह उतना ही असह्य है जितना कि अल्पसंख्यक नौकरशाही का शासन। हमें अत्यंत धैर्य के साथ और विनम्र युक्तियों के द्वारा अल्पमत को अपनेपन के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। आज्ञा के द्वारा और दण्ड के भय के कारण ही काम करने की शिक्षा हमें मिली है। यह सम्भव है दिन दिन हमारी बढती शक्ति जो हम प्राप्त कर रहे हैं उसकी चेतना के कारण हम अपने से दुर्बल मनुष्यों के सम्बन्ध में अपने शासकों की गलती को और भी बड़े पैमाने पर करने लगें। यह सभी स्थिति तो पहले से भी बुरी होगी।

मैंने बार बार कहा है कि कोई भी विचार धारा यह दावा नहीं कर सकती कि उसी का निर्णय ठीक है। हम सबसे भूल हो सकती है और हमें प्रायः अपने निर्णय में परिवर्तन करना पड़ता है। हमारे जैसे बड़े देश में प्रत्येक ईमानदार विचार धारा के लिये स्थान होना चाहिये। अतः अपने प्रति तथा दूसरों के प्रति जो कम से कम हम कर सकते हैं वह यह है कि हम अपने विरोधियों के दृष्टि कोण को समझने की कोशिश करें और यदि उनसे सहमत न हों तो उनका उतना ही आदर करें जितना कि हम उनसे अपने लिये आदर की आशा करते हैं। स्वस्थ सार्वजनिक जीवन की तथा स्वराज्य की योग्यता के लिये यह एक अनिवार्य मापदण्ड है। यदि हम में उदारता नहीं, सहिष्णुता नहीं, तो हम अपने मतभेदों को मित्रता पूर्वक दूर नहीं कर सकते। अतः हमें एक तृतीय दल अर्थात विदेशी प्रभुत्व के सामने झुकना ही पड़ेगा।

हिन्दुस्तान उन सब लोगों का है जो यहां जन्मे हैं और जो यहां पाले पोषे गये हैं और जो दूसरे देशों की ओर नहीं

देखते। अतः यह पारसी, यहूदी, भारतीय क्रिश्चियन, मुस्लिम और अन्य अहिन्दू जातियों का उतना ही है जितना हिन्दुओं का। स्वतंत्र भारत में हिन्दू राज्य की स्थापना नहीं होगी। यहां भारतीय राज्य होगा जिनका आधार किसी धार्मिक या साम्प्रदायिक बहुमत पर नहीं पर बिना धर्म-भेद के पूरे राष्ट्र के प्रतिनिधियों पर होगा। मैं कल्पना कर सकता हूँ कि एक सम्मिलित बहुमत हिन्दुओं को अल्पमत में परिणत कर सकता है। वे अपने गुणों और सेवा के बल पर चुने जायेंगे। धर्म तो एक व्यक्तिगत बात है जिसका राजनीति में कोई स्थान नहीं है। यह विदेशी शासन का अप्राकृतिक परिणाम है कि धर्म के अनुसार हमारे यहां अप्राकृतिक विभेद होगया है। जब विदेशी शासन हट जायेगा तो हम पर लोग इस बात पर हंसेंगे कि हम लोग झूठे आदर्शों और नारों में किस तरह चिपटे रहे।

'यूरोपियन और आंग्लो-इण्डियन का भविष्य'

प्रत्येक विदेशी को रहने के लिये स्वागत है केवल यदि वे यहां के लोगों के साथ अपने को एक समझें। भारत कोई भी ऐसे विदेशी को सहन नहीं कर सकता जो अपने हकों के संरक्षण की शर्त लगा करके साथ रहना चाहता है। इसका अर्थ यह होगा कि वे यहां एक उच्च वर्ग के रूप में रहना चाहते हैं और ऐसी स्थिति में संघर्ष अवश्यंभावी है।

कल्पना करें कि विदेशी शासन का अन्त हो गया, तब विदेशी क्या करें? जब ब्रिटिश अस्त्र की रक्षा उसे प्राप्त थी तो वह शायद ही स्वतंत्र कहा जा सकता था। स्वतंत्र मनुष्य के रूप में वह महसूस करेगा कि उन सुविधाओं को प्राप्त करना गलत था जिनका उपभोग हिन्दुस्तान के करोड़ों लोग नहीं कर

सकते थे। वह अपने कर्तव्य का पालन कर ही जीवन यापन करेगा जैसा कि भारतीय के लिये उचित है। वह भारत के शोषण पर जीवन बसर नहीं करेगा इसके विपरीत वह अपनी सारी प्रतिभा को भारत के लिये अर्पित करेगा और अपने सेवाओं के द्वारा अपने स्वीकृत देश के लिये वह अपने को अनिवाय बना देगा।

यदि यह यूरोपियनों के लिये लागू है तो यह आंग्लो-इण्डियन तथा और लोग जिन्होंने यूरोपियन कहलाने तथा सुविधायें प्राप्त करने के लिये यूरोपियन रहन सहन और वेश भूषा को अपना लिया है उनके लिये तो और भी लागू है। यदि ये लोग आज तक जो सुविधाओं का उपभोग करते आये हैं उन्हें जारी रखने की आशा करेंगे तो उन्हें कष्ट होगा। उन्हें तो धन्यवाद देना चाहिये कि उन्हें इस विशिष्ट आदर के बोझ से मुक्ति मिली जो किसी भी तर्क के विरुद्ध था और जो उनके गौरव में बट्टा लगाता था।

उसके राजनतिक अधिकार खतरे में नहीं है। उसकी सामाजिक स्थिति कुछ नहीं है। अपने भारतीय वंशजत्व पर वह कुढता है और यूरोपीय जातियां उसे अपनाती नहीं। अतः वह विचित्र असमंजस में है। मैं उससे मिला हूँ। वह अपने साधनों से अधिक पैमाने पर रहने के कारण, यूरोपियन रहन सहन तथा यूरोपियन की तरह दिखलाई पड़ने की कोशिश करने के कारण वह चुस जाता है। मैंने उसे समझाया है कि वह देश के लोगों के साथ अपने भाग्य को जोड़ने का निणय करें। यदि ये नर नारी साहस और दूरदर्शिता के साथ इस सहज मार्ग को अपनायें तो वे अपना भला करेंगे, वे भारत का भला करेंगे, और आज जिस विकट

परिस्थिति में अपने को वे पा रहे हैं उससे उनकी मुक्ति हो जायेगी। मूक आंग्लो-इण्डियन की सबसे बड़ी समस्या यह है कि वह अपनी सामाजिक स्थिति को प्राप्त करे। जिस समय वह अपने को भारतीय समझकर भारतीय की तरह रहने लगे उसका बेड़ा पार है।

———***:o:***———

गृह युद्ध का सामना कैसे किया जाय

एक मित्र महोदय ये प्रश्न भेजते हैं:—

(१) आपका सदा यह विश्वास रहा है और आपने इसे प्रगट भी किया है कि आदमियों को गुण्डों के द्वारा हमला किये जाने पर भी पूर्ण अहिंसा का बर्ताव करना चाहिये। जब नारियों पर हमले किये जांय और उनकी इज्जत हतकी हो तब भी क्या यह सिद्धान्त लागू हो? यदि लोग आपने अहिंसात्मक नेतृत्व के पालन में असमर्थ हों तो आप उन्हें क्या सलाह देंगे वे कायरों की तरह मर जायँ या हिंसा के द्वारा अत्याचार का सामना करें?

(२) मुसलिम लीग आज जो दो रंगी चाल चल रही है, क्या स्पष्ट शब्दों में आपको इसकी निन्दा नहीं करना चाहिये? जहां एक ओर तो इसके नेता गण खुले तौर पर हिन्दुओं के विरुद्ध हिंसा और जेहाद का प्रचार कर रहे हैं वहां दूसरी ओर ये ही लोग मंत्री के पद पर हैं और इनके हाथ में शासन का सूत्र है यहां तक पुलिस और न्याय का महकमा भी।

(३) क्या भारतवर्ष में कोई वैधानिक शक्ति नहीं जो इतिहास में अभूत पूर्व भूलभुलैया का अन्त कर सके?

(४) क्या आप महसूस करते हैं कि आज की हालातों को यदि कायम रहने दिया गया तो गृह युद्ध अनिवार्य हो

जायेगा? आप अपने देशवासियों को इस संकट का किस प्रकार सामना करने का उपदेश देंगे?

उत्तरः—(१) मैंने जिस समाज की कल्पना की है प्रश्न कर्त्ता के द्वारा कल्पित अत्याचार की सम्भावना नहीं। पर जिस सामाज में हम आज रह रहें हैं उसमें यह अत्याचार होते अवश्य हैं। मेरा उत्तर स्पष्ट है। एक अहिंसक को अपनी रक्षा या स्त्री जाति की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये बिना प्रतिहिंसा की भावना या क्रोध या कोप के भाव के मर मिटना चाहिये। यह वीरता का सर्व श्रेष्ठ रूप है।

यदि कोई व्यक्ति या जमात जीवन के इस महान् नियम, जिसमें भ्रामक नेतृत्व कहा जाता है, के पालन में असमर्थ है या अनिच्छुक है तो इसे दूसरा घटिया तरीका यह है कि प्रतिहिंसा में या विरोध में प्राण गवां दिया जाय। पर यह प्रथम से वहुत ही निकृष्ट है। कायरता तो नामरदी है। जो हिंसा से भी बदतर है। कायर बदला लेना तो चाहता है पर वह मृत्यु से डरता है अतः रक्षा के लिये दूसरों की तरफ, भले ही तत्कालीन सरकार ही हो, देखता है। कायर में पूरी आदमीयत नहीं। उसे नर नारियों के समाज की सदस्यता की योग्यता नहीं। अन्त में यह कहूं कि जिस नारी ने मेरी सलाहों का पालन किया है अथवा जो भाविष्य में करेगी वह अपने भाई या बहन की सहायता की प्रतीक्षा किये बिना अपनी रक्षा कर सकेगी।

(२) ऊपर जिस दोरंगी चाल की बात कही गई है वह एक दम बुरी है। हमारे राष्ट्रीय जीवन का यह बड़ा ही अन्धकारयम परिच्छेद है। मैं सार्वजनिक रूप से इसकी निन्दा

करता हूं। सौभाग्यवश यह इतनी बुरी चीज है कि अधिक दिन तक टिक नहीं सकती।

(३) वैधानिक शक्ति तो केवल अंग्रेज ही हैं। हम सब उनके हाथ की कठपुतली मात्र हैं। परन्तु उन्हें बदनाम करना गलत और बेवकूफी है। वह अपने स्वाभाविक रूप में कार्य कर रहा है। उसने अपने हाथों में हमें कठपुतली बनने के लिये बाध्य नहीं किया है। हम खुद ही उनके पास दौड़ कर जाते हैं। अतः हमारे लिये रास्ता साफ है, हम चाहें तो अंग्रेजों के खेल में साथ न दें।

हम लोग यह स्वीकार करलें कि अंग्रेज शक्ति भारत छोड़ने लिये कोशिश कर रही है। पर वे नहीं जानते कि किस तरह वे ईमानदारी से भारत छोड़ना चाहते हैं पर वे यह भी चाहते हैं कि छोड़ने के पहले जो गलतियां वे करते आयें उन्हें परिमार्जित कर जायें। मैं उनसे सदा कहता रहा हूँ कि जल्द से जल्द भारत को उसके भाग्य पर छोड़ देने से वे अपनी भूलों का परिमार्जन कर सकेंगे। पर जो सरकार की नौकरियां करते हैं, इस स्पष्ट बात को समझ नहीं सकते। उनको इस बात का घमण्ड है कि वे भारत को हमसे ज्यादा जानते हैं। एक शताब्दि से अधिक हमें दासता के बन्धन में बांध रखने में सफल होने के कारण वे हमारे भाग्य के विधाता बनने का दावा पेश करते हैं। यदि हमें अपने ध्येय को शान्ति से पाना है तो हमें इसे बुरा नहीं मानना चाहिये। सत्याग्रह में बदले की भावना का स्थान नहीं। यह ध्वंश में नहीं पर हार्दिक परिवर्तन में विश्वास करता है। असफलता होती है क्योंकि सत्याग्रह में कहीं चूक है नियम की भूल के कारण नहीं। अंग्रेजों ने, चाहे जिस कारण हो; भारत छोड़ना निश्चित कर लिया

है। अब उनके दोष ज्यादा से ज्यादा दिखाई पड़ने लगेंगे। लोगों को पता चलेगा कि यह टूटी लकड़ी है। जब हिन्दू और मुसलमान आज की तरह लड़ते ही जायँ तो उन्हें समझलेना चाहिये कि यदि भारत को स्वतंत्र होना है तो ब्रिटिश शक्ति की ओर रक्षा के लिये नहीं देख सकते।

(४) अब हम अन्तिम प्रश्न पर आते हैं। अभी गृह युद्ध आरम्भ तो नहीं हुआ हैं। हां, हम इसके समीप आते जाते हैं। अभी तो हम इसका खेल कर रहे हैं। युद्ध सामूहिक या राष्ट्रीय पैमाने पर की गई गुण्डेबाजी का नाम है। यदि अंग्रेज चतुर हैं तो इससे अपने को पाक रखेंगे पर बात तो कुछ दूसरी ही दिखलाई पड़ती है। प्रान्तीय धाराओं के अंग्रेज सदस्य इतनी सी छोटी बात को समझने में ये भूलकर रहे हैं कि १६३५ के अनुसार उन्हें जगहें इसलिये नहीं दी गई थी क्योंकि यह न्याय पूर्ण था पर इसलिये कि वे ब्रिटिश स्वार्थों की रक्षा करेंगे और हिन्दू और मुसलमानों को पृथक रखेंगे पर वे इस बात को समझते नहीं। यह छोटी सी बात है पर फिर भी इससे पता चलता है कि हवा का रुख किस ओर है। स्वराज्य के प्रेमियों की इन अशुभ सूचनाओं से घबड़ाना नहीं चाहिये। मेरी राय तो हर हालत में सत्याग्रह की है। स्वराज्य के लिये इससे अधिक सुगम मार्ग नहीं है। जो स्वतंत्रता की स्वास्थ्य-प्रद वायु का सेवन करना चाहता है उसे सेना या पुलिस की सहायता के प्रति आंखें मूंद लेनी चाहिये। हमें अपनी ही सबल भुजाओं पर अथात अपने सबल मस्तिष्क और इच्छा-शक्ति का ही भरोसा रखना चाहिये। इसके लिये अस्त्रों की आवश्यकता नहीं।

भारत और विश्व शान्ति

मैं अपने विश्वास को फिर दोहरा रहा हूँ कि मित्र-दल अथवा विश्व के लिये तब तक शान्ति नहीं हो सकती जब तक कि वे युद्ध और इसके साथ रहने वाली धोखे बाजी से उनका विश्वास नहीं उठ जाता और जब तक वे सब जातियों और राष्ट्रों की बराबरी के आधार पर सच्ची शान्ति का महल नहीं खड़ा करना चाहते। सब युद्धों को समाप्त करने की खोज करने वाले विश्व में एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र के शोषण और शासन का स्थान नहीं हो सकता। ऐसे ही विश्व में सैनिक बल में कमजोर राष्ट्र आतंक और शोषण के भय से मुक्त हो सकता है।

आज संसार के श्रेष्ट विचारक परस्पर युद्ध में निरत पूर्ण स्वतंत्र राज्यों की मित्रनहीं, पर अन्योन्याश्रित मित्र राज्यों के संघ की कामना करते हैं इसकी पूर्ति दूर की बात भले ही हो। मैं अपने देश के लिये कोई उच्च दावा पेश नहीं करना चाहता। परन्तु मैं इसमें कोई असंभवता नहीं देखता कि स्वतंत्रता से बढ कर हम अन्योन्याश्रित विश्वता की स्वीकृति के लिये सहमति प्रगट करें।

भारत ने कभी किसी राष्ट्र के विरुद्ध युद्ध नहीं छेड़ा है। उसने अपनी आत्म रक्षा के भाव से कभी असंगठित या अर्द्ध संगठित रूप में विरोध किया है अतः उसे शान्ति की इच्छा की भावना को जागृत करने की जरूरत नहीं। वह उसके

पास पूर्ण रूप से मौजूद है चाहे उसे उसका ज्ञान हो या न हो। वह शान्तिमय उपायों के द्वारा अपने शोषण का विरोध कर शान्ति स्थापना में योग दे सकता है। दूसरे शब्दों में शांति-मय उपायों द्वारा उसे अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करनी है। यदि वह ऐसा कर सका तो विश्व शांति के लिये यह सर्वश्रेष्ठ योगदान हो सकता है जो एक राष्ट्र कर सकता है।

हमारी राष्ट्रीयता से दूसरे राष्ट्र को कोई भी भय नहीं हो सकता क्योंकि हम दूसरे का शोषण नहीं करेंगे जैसा कि हम दूसरों को अपना शोषण नहीं करने देंगे। स्वराज्य के द्वारा हम सारे विश्व की सेवा करेंगे।

तमसो मा ज्योतिर्गमय

६ जुलाई १९४७ की प्रार्थना सभा में बोलते हुए महात्मा गांधी ने कहा कि स्वतंत्रता अब प्राप्त होने वाली है पर ऐसी महान् घटना वैसा उत्साह नहीं। कारण कि देश का विभाजन दो भागों में हो गया है जो शस्त्र से सज्जित विरोधी दलों का रूप धारण करने वाले हैं। एक रक्षा सेना नहीं रहेगी। सेना का विभाजन होगा। इसके लिये तैयारियां हो रही हैं। हम उन गौरव पूर्ण और कठिन दिनों में जब ब्रिटिश शासन का विरोध करते थे तब आपसी झगड़ों को दबाने के लिये सेना नहीं रखने की बड़ी बड़ी बातें करते थे क्योंकि ये झगड़े होंगे ही नहीं और एक विदेशी शत्रु के विरुद्ध भी रक्षा सेना नहीं रखना चाहते थे।

अफसोस है कि अब सेना का खर्चा बहुत बढ गया है और इसमें कोई खास कमी होने की आशा जल्द नहीं। बात तो यह है, आपसी झगड़े के कारण सेना के खर्चे में वृद्धि होने की सम्भावना है। शस्त्रास्त्रों के खर्चे की हास्यास्पद घुड़दौड़ में हम संलग्न होंगे-राष्ट्र निर्माण तथा शिक्षा वगैरह के लिये कुछ भी नहीं। यह सब आपसी कत्ल आम के लिये होगा।

इसमें मुझे प्रसन्न होने या गौरवान्वित अनुभव करने जैसी कोई बात नहीं दिखती। वातावरण अन्धकार पूर्ण है। क्या भारत की स्वातंत्रता का अर्थ यह होगा कि उन सब चीजों को छोड़ने की तैयारी करें जिन्हें हमने प्यार करना सीखा है। गौरवान्वित अनुभव करने के बदले यह हृदय के टटोलने का

अवसर है। गत तीस वर्षों में स्वतंत्रता संग्राम के एक प्रमुख सैनिक होने के नाते मैं स्वयं अपनी बड़ी सतर्कता से परीक्षा कर रहा हूँ। क्या हमने संग्राम को गौरवमय इसी लिये कहा था कि उसका ऐसा दुखमय अन्त हो? मैं वैदिक ऋषि के शब्दों में यही कहूँगा "तमसो मा ज्योतिर्गमय" (अंधकार से हटा ज्योति-पथ पर ले चलो।)

७ जुलाई १९४७ की प्रार्थना सभा में बोलते हुए गांधीजी ने कहा, "कल संध्या समय मैंने यह कहा कि स्वतंत्रता को आती देख कर उत्साह क्यों नहीं होता। आज कहूँगा कि हम चाहें तो किस तरह इस अभिशाप को भी वरदान में परिणत कर सकते हैं। बीती बात पर सोचते रहना अथवा इस या उस दल को दोष देते रहने से कोई लाभ नहीं। वैधानिक रूप में तो स्वतंत्रता आज से कुछ दिनों बाद आयेगी। बात यह है कि सबने सम्मिलित होकर परिस्थिती को स्वीकार किया है। अब पीछे मुड़ना हो नहीं सकता। जो बात स्वीकृत हो चुकी है उसे परमात्मा की विचित्र गति ही बदल सकती है।

एक सहज और तुरंत उपाय यह है कि कांग्रेस और लीग साथ मिल कर बिना वाइसराय के हस्तक्षेप के ही कोई पारस्परिक समझौता करलें। लीग को ही पहला कदम उठाना है। मैं यह नहीं कहता कि पाकिस्तान को नष्ट कर दिया जाय। हम मानलें कि वह तो स्थापित हो गया और वह एक ऐसी घटना है जिसमें तर्क का स्थान नहीं। पर वे दस आदमियों के ऊँट भर वाली एक झोंपड़ी में साथ बैठ सकते हैं इस प्रतिज्ञा के साथ कि जब तक वे किसी समझौते पर नहीं पहुँचे नहीं हटेंगे। मैं जोर देकर कहता हूँ कि यदि ऐसी बात हो तो भारत को दो बराबर हैसियत के टुकड़ों में बांटने वाले बिल से कहीं अधिक अच्छा होगा।

हमारी असहाय आंखों के सामने जो गुजर रहा है उस पर न तो हिन्दू ही प्रसन्न हैं और न मुसलमान ही। यह मैं पक्की गवाही पर कह रहा हूँ यदि प्रतिदिन मुझ से मिलने वाले या पत्र व्यवहार करने वाले हिन्दू और मुसलमान धोखा नहीं दे रहे हैं तो। मगर-यह एक बड़ा मगर है, मालूम होता है कि मैं एक असम्भव बात कर रहा हूँ। जब ब्रिटिश हस्तक्षेप ने अपनी चाल चलदी है तो लीग से यह कैसे आशा की जा सकती है कि वह अपने प्रतिद्वन्दियों के सामने आकर भाइयों और मित्रों की तरह मिल-जुल कर समझौता करें।

एक दूसरा रास्ता भी है जो उतना नहीं तो करीब करीब उतना ही कठिन है। एक सेना जो अभी तक एक ध्येय से काम कर रही थी, चाहे वह ध्येय कुछ भी रहा हो, उसको दो विरोधी टुकड़ों में बांट देने की बात ऐसी जो प्रत्येक भारत, प्रेमी को डरा देने वाली है। क्या दो सेनाओं का निर्माण इसी-लिये होगा कि वे एक समान भय का सामना न कर एक दूसरे का नाश करे और आश्चर्य चकित संसार के सामने यह प्रदर्शित करें कि आपस में लड़ मरने के सिवा उनमें किसी बात की योग्यता नहीं।

मैने भावी बात को भयानक नग्नता से रखा है ताकि प्रत्येक इसे देख सके और बचे। दूसरा रास्ता निसंदेह आकर्षक है। क्या हिन्दू और स्वतंत्रता-संग्राम में उनके साथ देने वाले अन्य लोग खतरे का वास्तविक रूप देख कर जगेंगे और कहेंगे कि उन्हें सेना की कोई जरूरत नहीं अथवा कम से कम इस बात को अस्वीकार करेंगे कि सेना को मुसलमान भाईयों के विरुद्ध काम में न लाया जाय चाहे वे यूनियन के रहने वाले हों या पाकिस्तान के। इस प्रस्ताव का अर्थ यह होगा कि हिन्दुओं और उनका साथ देने वालों के तीस वर्षों की कमजोरी एक सुन्दर

शक्ति में बदल देना। समझा को इस रूप में रखना इसकी व्यर्थता का प्रदर्शन करना होगा। हो सकता है कि ईश्वर ने कभी मनुष्य की मूर्खता को चतुरता में परिणत कर दिया हो। पर उन दोनों दलों के हित के लिये जिनकी बदौलत देश को निरन्तर युद्ध में सलग्न विरोधी दलों में विभाजित हो गये हैं यह प्रयत्न अच्छा होगा।